अग्रकथा

चिरंजी लाल अग्रवाल

दृष्टि विहंगम

अग्र-कथा आग्रेय गण के संस्थापक, अग्रोहा के निर्माता तथा भारतीय समाजवाद के प्रतिपादक महाराजा अग्रसेन के सम्पूर्ण जीवन की काव्यमयी यशोगाथा है। यह उन सभी अनुश्रुतियों का संकलन है जो महाराजा अग्रसेन के जीवन से सम्बद्ध हैं। अत: यह काव्य के साथ-साथ इतिहास भी है।

यह महाकाव्य के लक्षणों का पालन करती है। इसमें प्राय: सभी मुख्य रसों, अलंकारों, प्रकृति चित्रण, ऋतु वर्णन, यात्रा, उत्सव, आखेट, राज्याभिषेक, विवाह आदि के प्रसंग हैं।

कथा के मूल तत्त्व को यथावत् रखते हुए यह कल्पना द्वारा कथानक को सुविकसित और सुपल्लवित करती है।

गंगावतरण एवं गया माहात्म्य वर्णन इसकी अन्तर्कथायें हैं। 'शूरसेन का विवाह' सर्ग एक नया आख्यान है। इसमें वैवाहिक रीतियों, परम्पराओं और सप्त वचनों का अपूर्व समावेश है जो नव दम्पति के वैवाहिक सम्बन्ध को सुदृढ़ करता है।

शृंगार, करुण और शान्त इसके प्रमुख रस हैं। 'माधवी का विरह' विप्रलंभ शृंगार की अभिव्यक्ति करता है और 'छः ऋतु—बारह मास' प्रसंग अनूठा ऋतु वर्णन है।

यह अग्रवाल समाज का जातीय काव्य तो है ही, साथ ही सम्पूर्ण राष्ट्रीय और मानवीय स्तर पर प्रेरणादायक रचना है जिसमें भारतीय संस्कृति का विशद चित्रण है।

अग्रकथा

(अग्रकुल प्रवर्तक श्री अग्रसेन महाराज के
सम्पूर्ण जीवन पर आधारित प्रबन्ध काव्य)

रचयिता

चिरंजी लाल अग्रवाल

प्रकाशक
अग्रवाल परिषद् (पंजीकृत)
रामकृष्णपुरम्, नई दिल्ली-११००२२

प्रथम संस्करण
© सर्वाधिकार लेखकाधीन सुरक्षित

मूल्य २५ रु०

प्राप्ति स्थान—
चिरंजीलाल अग्रवाल
सेक्टर ८/८६७ रामकृष्णपुरम्
नई दिल्ली-११००२२
दूरभाष-६०९९३०

मुद्रक—अजय प्रिंटर्स, एक्स-११, नवीन शाहदरा, दिल्ली-११००३२

समर्पण

करूँ वन्दना माँ 'लक्ष्मी' की, झुका हुआ चरणों में भाल।
स्मरण करता भक्तिभाव मय, पूज्य पिता 'श्री मोतीलाल'॥
निज काया को तपा कर्म से, भाव पुष्प अर्पित करता।
अग्र-कथा के मंगल घट से, अपना हृदय-पात्र भरता॥
मन मानस के मुक्ताकण, पूज्य भेंट करता रचना।
करूँ स्तवन सादर सविनय, धन्य हुई यह रसना॥
गंगा सम पावन अग्र-कथा, करता सभक्ति अर्पण।
दो निज आशीर्वाद पितृवर, करता ग्रंथ समर्पण॥

चिरंजीलाल अग्रवाल

भूमिका

महाराजा अग्रसेन और अग्रवाल जाति के इतिहास के सम्बन्ध में बहुत-सा साहित्य गत पचास वर्षों में प्रकाशित हुआ है। श्री चिरंजीलाल अग्रवाल द्वारा विरचित 'अग्रकथा' काव्य इस साहित्य में एक सराहनीय व अनुपम वृद्धि है।

एक सदी से भी अधिक समय हुआ, जब भारतेन्दु श्री हरिश्चन्द्र ने 'अग्रवालों की उत्पत्ति' नाम से एक छोटी-सी पुस्तिका लिखी थी। छोटी होने पर भी यह पुस्तिका बहुत महत्त्व की थी, क्योंकि इसे परम्परागत अनुश्रुति और 'महालक्ष्मी व्रत कथा' नामक एक प्राचीन हस्तलिखित संस्कृत पुस्तक के आधार पर लिखा गया था। भारतेन्दु जी के पश्चात् जो अनेक प्रयत्न अग्रवाल जाति के इतिहास को प्रकाश में लाने के लिए किए गए, उनमें श्री शिवप्रताप द्वारा लिखित 'राजा अग्रसेन का जीवन-चरित्र' और श्री ब्रह्मानन्द ब्रह्मचारी द्वारा प्रणीत 'श्री विष्णु अग्रसेन वंश पुराण' उल्लेखनीय हैं। इन दोनों ग्रन्थों को भाटों के गीतों के आधार पर लिखा गया था। प्राचीन समय में भारत में 'सूत' लोग होते थे, जो विविध राजवंशों, ऋषियों व अन्य सम्भ्रान्त कुलों की वंशावलियों को याद रखते थे और उनके पुरातन इतिवृत्त व महत्त्वपूर्ण घटनाओं को सुनाया करते थे। सूतों के वर्तमान प्रतिनिधि भाट हैं। विविध राजपूत कुलों के तो भाट होते ही हैं, पर अग्रवालों के भी भाट विद्यमान हैं। वे गा-गाकर जो गीत सुनाते हैं, महाराजा अग्रसेन तथा अग्रवाल इतिहास की बहुत-सी महत्त्वपूर्ण बातें उनसे ज्ञात होती हैं। ऐतिहासिक दृष्टि से भाटों के गीतों में सुरक्षित प्राचीन अनुश्रुति का बहुत उपयोग है। श्री शिवप्रताप ने 'राजा अग्रसेन का जीवन चरित्र' भाटों के गीतों के आधार पर ही लिखा था। श्री ब्रह्मानन्द ब्रह्मचारी की पुस्तक भी भाटों में चली आ रही परम्परागत अनुश्रुति पर ही आधारित थी। ये दोनों पुस्तकें सन् १९३७ से पहले ही प्रकाशित हो गई थीं।

पर महाराजा अग्रसेन और अग्रवाल जाति की उत्पत्ति के सम्बन्ध में गम्भीर शोध का प्रारम्भ तब हुआ, जब श्री सत्यकेतु विद्यालंकार ने इस कार्य को अपने हाथ में लिया। अखिल भारतीय अग्रवाल महासभा से प्रोत्साहन प्राप्त कर वे अग्रवाल समाज के प्राचीन इतिहास की खोज में लग गए, जिसके परिणामस्वरूप उनका 'अग्रवाल जाति का प्राचीन इतिहास' सन् १९३८ में प्रकाशित हुआ। इस ग्रन्थ में जो मन्तव्य प्रतिपादित किया गया था, उसे संक्षेप में इस प्रकार सूचित

किया जा सकता है—'प्राचीन समय में भारत में बहुत-से छोटे-छोटे राज्य थे, जिन्हें 'जनपद' कहा जाता था। प्रत्येक जनसद के अपने कानून, अपने रीति-रिवाज तथा अपनी पृथक् विशेषताएँ होती थीं। कुछ जनपदों में राजाओं के वंशक्रमानुगत शासन थे और कुछ में गणतन्त्र शासनों की सत्ता थी। जब भारत में साम्राज्यवाद का विकास हुआ, तो इन जनपदों की राजनीतिक स्वतन्त्रता नष्ट हो गई। शैशुनाग, नन्द, मौर्य आदि राजवंशों के प्रतापी सम्राटों के शासन-काल में इन जनपदों के लिए अपनी स्वतन्त्र राजनीतिक सत्ता कायम रख सकना सम्भव नहीं रह गया। पर साम्राज्यवाद के काल में भी इन जनपदों का सामाजिक और आर्थिक अस्तित्व पृथक् रूप से कायम रहा। इस देश के नीति शास्त्र प्रणेताओं की यह नीति थी कि विविध जनपदों के अपने धर्म, कानून, चरित्र, व्यवहार व रीति-रिवाज आदि को कायम रहने दिया जाए और सम्राट् उनमें हस्तक्षेप न करें। इसी नीति का यह परिणाम हुआ कि जनपदों की पृथक् राजनीतिक सत्ता का अन्त हो जाने पर भी उनका पृथक् सामाजिक अस्तित्व कायम रहा, और वे समयान्तर में 'जातियों' के रूप में परिवर्तित हो गए। अग्रवाल जाति का विकास भी इसी प्रक्रिया द्वारा हुआ। प्राचीन समय में 'आग्रेय' नाम का एक जनपद था, जिसकी स्थिति हिसार (हरियाणा) जिले के उस क्षेत्र में थी, जहाँ आज अगरोहा का विशाल खेड़ा विद्यमान है। आग्रेय जनपद की स्थापना महाराजा अग्रसेन द्वारा की गई थी। शुरू में वहाँ वंशक्रमानुगत राजाओं का शासन था, पर बाद में राजतन्त्र शासन का अन्त होकर वहाँ गणतन्त्र शासन का प्रारम्भ हो गया था। प्राचीन इतिहास में ऐसा होना कोई असाधारण बात नहीं थी। सभी जानते हैं कि प्राचीन कुरु जनपद में पहले कुरु वंश के राजाओं का वंशक्रमानुगत शासन था। धृतराष्ट्र और दुर्योधन आदि वहाँ के वंशक्रमानुगत राजा थे। पर बाद में वहाँ गणतन्त्र शासन स्थापित हो गया था। महाभारत के समय में कुरु और पांचाल दोनों राजतन्त्र जनपद थे। पर कौटलीय अर्थशास्त्र (चौथी सदी ईस्वी पूर्व) में इनकी गणना गणतन्त्र जनपदों में की गई है। कुरु और पाञ्चाल जनपदों के समान आग्रेय जनपद में भी कालान्तर में गणतन्त्र शासन स्थापित हो गया था।

श्री सत्यकेतु विद्यालंकार ने अग्रवाल जाति का जो इतिहास सन् १९३८ में लिखा था, उसका मुख्य आधार साहित्यिक था। महाभारत, पाणिनि की अष्टाध्यायी तथा कतिपय अन्य ग्रन्थों के अतिरिक्त उन्होंने 'महालक्ष्मी व्रत कथा' (अग्रवैश्य वंशानुकीर्तनम्) और 'उरुचरितम्' नाम के दो हस्तलिखित ग्रन्थों का भी अपने शोध के लिये प्रयोग किया था, और इस साहित्यिक सामग्री के आधार पर महाराजा अग्रसेन एवं अग्रवाल जाति के प्राचीन इतिहास को प्रकाश में लाने का प्रयत्न किया था। प्राचीन इतिहास के शोध में केवल साहित्यिक आधार को पर्याप्त नहीं समझा जाता। सत्यकेतु जी के सुझाव पर भारत के पुरातत्व सर्वेक्षण

विभाग ने अगरोहा के खेड़े के उत्खनन का कार्य प्रारम्भ किया, जिसमें ऐसे बहुत-से सिक्के उपलब्ध हो गए जिन पर 'अगोदके अगाच जनपदस' (अग्रादके आग्रेय जनपदस्य) उत्कीर्ण है। आग्रेय जनपद की सत्ता में इन सिक्कों के कारण किसी सन्देह की गुंजाइश नहीं रह गई। बाद में अन्य भी अनेक ऐसे उत्कीर्ण लेख प्राप्त हो गए, जिनमें अग्रवंश व अग्रोतक वंश के व्यक्तियों का उल्लेख है।

आग्रेय जनपद की सत्ता को प्रमाणित करने के लिये पुरातत्त्व-सम्बन्धी ठोस सामग्री के उपलब्ध हो जाने पर यह तो सब विद्वानों ने स्वीकार कर लिया कि अग्रवाल जाति की उत्पत्ति आग्रेय गण से हुई है पर इस जनपद के संस्थापक महाराजा अग्रसेन की सत्ता के सम्बन्ध में फिर भी विवाद कायम रहा। अब तक कोई ऐसा सिक्का व शिलालेख आदि उपलब्ध नहीं हुआ है, जिसमें अग्रसेन का स्पष्ट उल्लेख हो। केवल अनुश्रुति या साहित्य के आधार पर किसी व्यक्ति की ऐतिहासिक सत्ता को स्वीकार करना अनेक विद्वानों की सम्मति में समुचित नहीं है। ऐसे एक विद्वान् श्री डा० परमेश्वरीलाल गुप्त हैं, जो पुरातत्व एवं प्राचीन मुद्राशास्त्र के सुविख्यात विशेषज्ञ हैं। उनका कथन है, कि जब तक महाराजा अग्रसेन की सत्ता कतिपय पुरातत्व सम्बन्धी अवशेषों (शिलालेख, सिक्के आदि) द्वारा प्रमाणित नहीं हो जाती, केवल अनुश्रुति व साहित्यिक आधार पर उनकी ऐतिहासिकता को स्वीकार नहीं किया जा सकता। पर बहुसंख्यक विद्वान् डा० गुप्त के इस मन्तव्य से सहमत नहीं हैं। रघुवंश के राजा दिलीप, रघु, दशरथ तथा रामचन्द्र आदि के और द्वारकाधीश श्री कृष्ण के कोई शिलालेख व सिक्के अब तक उपलब्ध नहीं हुए। उनके सम्बन्ध में जो भी जानकारी हमें है, उसका आधार केवल साहित्य व अनुश्रुति ही है। पुराणों में जो वंशावलियाँ विद्यमान हैं और प्राचीन राजवंशों के प्रतापी राजाओं का जो उल्लेख है, उनकी ऐतिहासिकता को प्रमाणित करने के लिए भी अब तक कोई पुरातत्व-विषयक सामग्री उपलब्ध नहीं हुई है। तो क्या इसी कारण उनकी सत्ता से इन्कार किया जा सकता है। महाराजा अग्रसेन कीं सत्ता भाटों के गीतों और अनुश्रुति द्वारा तो सूचित होती ही है, 'अग्रवैश्यवंशानुकीर्तनम्' और 'उरुचरितम्' के रूप में दो ऐसी पुस्तकें भी अब प्राप्त हैं, जिन्हें 'उपपुराणों' के रूप में स्वीकार किया जा सकता है।

श्री सत्यकेतु विद्यालंकार की पुस्तक के प्रकाशित हो जाने के पश्चात् अग्रवाल इतिहास और महाराजा अग्रसेन के सम्बन्ध में शोध करने के लिए अनेक विद्वान् प्रवृत्त हुए, जिनमें श्री निरंजनलाल गौतम और डा० स्वराज्यमणि अग्रवाल के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। अग्रवाल इतिहास के सम्बन्ध में शोधकार्य के लिए श्री देवकीनन्दन गुप्त द्वारा एक शोध संस्थान भी स्थापित किया गया, और वहाँ उस सब साहित्य तथा अन्य सामग्री का संग्रह किया गया, जो अब तक अग्रवाल जाति के इतिहास और महाराजा अग्रसेन के सम्बन्ध में उपलब्ध है। इस

शोध संस्थान द्वारा अनेक विद्वानों के सहयोग से शोध कार्य प्रारम्भ किया गया, और बहुत-सी नई सामग्री प्राप्त की गई। अगरोहा के खेड़े का उत्खनन कराने के लिए भी संस्थान द्वारा प्रयत्न किया गया, जिसके परिणामस्वरूप कतिपय नये पुरातात्विक तथ्य भी ज्ञात हुए। अग्रवाल जाति की विविध पत्र-पत्रिकाओं में महाराजा अग्रसेन के विषय में बहुत-से लेख व कविताओं आदि का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ, और श्री तिलकराज अग्रवाल के पुरुषार्थ से महाराजा अग्रसेन पर एक फिल्म भी बन गई। अपने प्राचीन अभिजन अगरोहा के जीर्णोद्धार की ओर भी अग्रवाल समाज का ध्यान गया, और इसके लिए श्री देवकीनन्दन गुप्त, श्री तिलकराज अग्रवाल और श्री रामेश्वरदास गुप्त आदि महानुभावों द्वारा सराहनीय प्रयत्न किया गया। अगरोहा अब अग्रवालों के लिए तीर्थ का रूप प्राप्त कर चुका है और वहाँ अनेक मन्दिरों एवं धर्मशालाओं का भी निर्माण हो गया है। महाराजा अग्रसेन की ऐतिहासिकता को भारत सरकार द्वारा भी स्वीकार कर लिया गया, और इसी कारण उनके नाम से डाक टिकट भी जारी किया गया।

महाराजा अग्रसेन के सम्बन्ध में जो साहित्य अब तक प्रकाशित था, वह या तो शोध ग्रन्थों के रूप में था और या प्रशस्तियों के रूप में। महापुरुषों की कीर्ति को अमर करने के लिए काव्यों की रचना की परम्परा सदा से रही है। संस्कृत में कितने ही महाकाव्य राजाओं व राजर्षियों के जीवन पर लिखे गए, जिनके कारण उनका यश:शरीर अमर हो गया। आवश्यकता इस बात की थी कि महाराजा अग्रसेन पर भी एक महाकाव्य या काव्य की रचना की जाती, ताकि सर्वसाधारण लोग उसे पढ़कर इस महापुरुष के अनुपम व्यक्तित्व और कर्तृत्व के सम्बन्ध में मनोरंजक रूप से समुचित जानकारी प्राप्त कर सकते। सर्वसाधारण जनता के लिए गम्भीर शोध ग्रन्थों को पढ़ सकना कठिन होता है। सरस साहित्य (उपन्यास, कहानी, काव्य, नाटक आदि) के माध्यम से सर्वसाधारण पाठक लोकोत्तर व्यक्तियों (राजाओं, बलिदानी वीरों, सुधारकों व तत्त्वचिन्तकों आदि) के सम्बन्ध में सुगमता से जानकारी प्राप्त कर सकते हैं और उनकी उदात्त शिक्षाओं का अनुसरण करने के लिए भी तत्पर हो सकते हैं। महाराजा अग्रसेन एक लोकोत्तर व्यक्ति थे। उन्होंने हिंसा का परित्याग कर अहिंसा व्रत को स्वीकार किया था, प्रजा व राज्य के उत्कर्ष के लिए युद्ध के स्थान पर आर्थिक समृद्धि के मार्ग को अपनाया था और सम्पूर्ण प्रजा परस्पर सहयोग से एक-दूसरे के हित कल्याण में प्रवृत्त रहे—इसका एक क्रियात्मक व सरल उपाय निर्दिष्ट किया था। इन्हीं बातों का यह परिणाम है कि हजारों वर्ष बीत जाने पर भी वे अमर हैं और लाखों अग्रवाल उन्हें अपना पूर्वज, वंशकर और मूलपुरुष मानकर उनकी पूजा करते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि उनके अनुपम व्यक्तित्व, कर्तृत्व और चरित्र को जन मानस तक पहुँचाने के लिए एक काव्य की भी आवश्यकता थी, जिसे श्री चिरंजीलाल अग्रवाल ने 'अग्रकथा' की रचना कर पूरा कर दिया है। 'अग्रकथा' एक काव्य है, जिसमें सोलह सर्ग हैं। काव्य-पंक्तियों की कुल संख्या ४३०० है। इतने विशाल काव्य को यदि महाकाव्य भी कहा जाए, तो अनुचित न होगा। काव्य का सबसे बड़ा गुण रस है। जिससे पाठक के मन में रस का प्रादुर्भाव हो, वही रचना काव्य कही जा सकती है। 'रसात्मक काव्यं' जो रस से परिपूर्ण हो, वही काव्य होता है। श्री अग्रवाल द्वारा विरचित अग्रकथा पद्य तो है ही, उसमें अनेक स्थानों पर रसात्मकता भी है। अग्रकथा के तृतीय सर्ग में 'प्रकृति दर्शन' का प्रकरण बहुत मनोरम है। प्रताप नगर से विदा लेकर जब अग्रसेन यात्रा पर चले, तो प्रकृति के जिस मनोरम रूप का उन्होंने अवलोकन किया, कवि ने उसका बड़ा सुन्दर वर्णन किया है—

अग्रसेन थे आगे बढ़ते, लखते थे गिरि, सरिता, कानन।
छाये नभ में बादल श्यामल, त्रिविध समीर बह उठा पावन॥
कलरव करते थे विहंग लौट रहे थे निज नीड़ों को।
अग्रसेन थे आगे बढ़ते, छोड़ चुके थे निज घर को॥
हुआ अंधेरा था नभ में, निशा नायिका मुसकाई।
कुसुमायुध के दर्शन करके, निज शोभा थी बिखराई॥
स्वागत किया निशा सुन्दरि ने, बनी मोहिनी थी छविधाम।
धारण करके तिमिर वस्त्र को, रूप छिपाया सुखद ललाम॥

महाराज अग्रसेन ने जब एक नया राज्य स्थापित करने का संकल्प किया, तो वहाँ के निवासियों के सम्मुख अपने राज्य का जो आदर्श उन्होंने प्रस्तुत किया, उसे निम्नलिखित सामूहिक गान द्वारा प्रकट किया गया है—

जन-जन में हम ज्योति जगाएँ।
निज समाज को सुदृढ़ बनाएं॥
समता का सन्देश सुनाएँ।
रूढ़ि ग्रन्थियाँ सभी नशाएँ॥
करते हैं संकल्प अटल।
बने हमारा राज्य महान॥
त्याग, तपस्या और परिश्रम।
करें राज्य का शुभ उत्थान॥

जिस प्रसंग में यह सामूहिक गान दिया गया है, वह नव उद्‌बोधन का है। कुलगुरु के चरणों में सिर झुकाकर अग्रसेन ने एक नये राज्य की स्थापना का और वहाँ एक ऐसे समाजवाद के आदर्श को क्रियान्वित करने का निश्चय किया, जिसमें न कोई शोषक होगा न कोई शोषित और सब भेद-भावों का अन्त करके सब एक-दूसरे की सहायता के लिए तत्पर रहेंगे। इस संकल्प से लोगों में जिस

उत्साह का संचार हुआ, वही इस सामूहिक गान से उद्‌भासित किया गया है। इसी प्रकार माधवी के त्याग, प्रेम और समर्पण भाव का जिस सुन्दर व सरस रूप से इस काव्य में वर्णन किया गया है, वस्तुतः उससे रस का सृजन होता है।

अग्रकथा का कथानक प्रायः वही है, जो महाराजा अग्रसेन के जीवनवृत्त के विषय में सर्वमान्य है। पर कवि श्री चिरंजीलाल ने उसे विकसित एवं पल्लवित करते हुए अनेक नये प्रसंगों का समावेश किया है, जो काव्य के लिए आवश्यक थे। राजा अग्रसेन का पूर्व, पश्चिम, दक्षिण, उत्तर सब दिशाओं में यात्रा करना ऐसा ही प्रसंग हैं। इन यात्राओं के वर्णन में उन सब दर्शनीय स्थानों का उल्लेख किया गया है, जो भारत के विविध प्रदेशों में विद्यमान हैं। इसी प्रकार विवाह का वर्णन करते हुए विविध रीति-रिवाजों का सरस वर्णन तथा सप्तपदी के सातों पदों को उठाते हुए दी गई शिक्षाएँ—ऐसे प्रसंग हैं, जिनके कारण इस काव्य का महत्त्व बहुत बढ़ गया है। यह सही है, कि अग्रसेन अग्रवालों के पूर्व पुरुष थे, अग्रवाल उन्हें आराध्य मानते हैं। पर उनका जीवन ऐसा आदर्श था, कि जो लोग अग्रवाल कुल में उत्पन्न नहीं हुए, वे भी उनके जीवनवृत्त को पढ़कर बहुत कुछ सीख सकते हैं, और उच्च जीवन की प्रेरणा प्राप्त कर सकते हैं। वस्तुतः, महा-पुरुष किसी एक देश के, एक समाज के या एक जाति के ही नहीं होते। वे मनुष्य-मात्र के लिए मान्य व पूजनीय होते हैं। अग्रसेन भी ऐसे ही महापुरुष थे। श्री चिरंजीलाल अग्रवाल द्वारा विरचित अग्रकथा काव्य से महाराज अग्रसेन का ऐसा उदात्त चरित्र अभिव्यक्त हुआ है, जिसे सब कोई सम्मान्य मान सकते हैं।

सत्यकेतु विद्यालंकार

स्व-कथन

अपनी कृति 'अग्र-कथा' को समाज के सम्मुख प्रस्तुत करते हुए मुझे अत्यन्त हर्ष हो रहा है। मेरी प्रारम्भ से ही प्रबल अभिलाषा थी कि आग्रेय गण के संस्थापक, अग्रोहाधिपति एवं भारतीय समाजवाद के प्रबल समर्थक श्री अग्रसेन जी महाराज के जीवन-वृत्त पर आधारित एक प्रबन्ध काव्य की रचना करूँ। इस सम्बन्ध में सितम्बर १९८१ ई० में 'अग्र-कथा' की रचना का प्रारम्भ हुआ, अथक परिश्रम के फलस्वरूप जून १९८५ ई० में यह रचना परिपूर्ण हुई। इसमें १६ सर्ग ५६ चरण और २०० पृष्ठ और ४३०० काव्य पंक्तियाँ हैं।

अग्र-कथा महाराजा अग्रसेन जी के सम्पूर्ण जीवन का एक इतिवृत्त काव्य है। इस दृष्टि से यह इतिहास भी है, क्योंकि इसमें अग्रसेन महाराज के सम्पूर्ण जीवन से सम्बन्धित लगभग सभी अनुश्रुतियाँ उपलब्ध हैं। इस रचना में मधुर भावों, सुकुमार कल्पनाओं, सभी वृत्तियों एवं नैसर्गिक कवित्व का भी समावेश है। इस रचना में महाराज अग्रसेन के आदर्श चरित्र को इस रूप में ढाला गया है, जिसकी आज विशेष आवश्यकता है और जिसके द्वारा श्री अग्रसेन केवल अग्रवाल समाज के ही आदृत पुरुष न रहकर, सम्पूर्ण भारत के, इस विश्व के एक धार्मिक, सामाजिक एवं आदर्श विभूति बन जाते हैं। इस रचना में अनेक स्थलों पर उनकी वाणी हमारा मार्ग-दर्शन तथा लोक कल्याणकारी वातावरण को उत्पन्न करती है।

अपने सहृदय पाठकों, साहित्य प्रेमियों और समाज-बन्धुओं की उदारता, रुचि एवं गुण ग्राहकता का मुझे सदा विश्वास रहा है। इस कारण मैंने अपनी रचना उनके सम्मुख रखने का साहस किया है। यदि वे इसे अपनाते हैं तो यह मेरा केवल सौभाग्य ही नहीं, अपितु उनकी उदारता, गुण ग्राहकता के साथ-साथ अग्रसेन महाराज के प्रति उनका श्रद्धाभाव भी होगा।

प्रसन्नता की बात है कि 'अग्रवाल जाति का प्राचीन इतिहास' के ग्रंथकार स्वनामधन्य डा० सत्यकेतु जी विद्यालंकार का आशीर्वाद इस रचना को प्राप्त है। उन्होंने अति व्यस्त होते हुए भी पर्याप्त समय निकालकर इस रचना की भूमिका लिखकर मुझे अनुग्रहीत किया है। इसके लिए मैं इनका अत्यन्त आभारी हूँ। सुप्रसिद्ध ऐतिहासिक रचना अग्रोत्कान्वय के ग्रंथकार स्वर्गीय वैद्यवर

श्री निरंजनलाल जी गौतम, शाहदरा दिल्ली का आज अभाव खटक रहा है, जिन्होंने इस रचना के सृजन में मेरा भरपूर मार्ग-दर्शन किया था, इस अवसर पर मैं उनके प्रति अपनी हार्दिक श्रद्धाञ्जलि अर्पित करता हूँ।

माननीय सर्वश्री बनारसी दास जी गुप्त, कृष्ण कुमार जी बिड़ला और श्री किशन जी मोदी का मैं हार्दिक आभारी हूँ, जिन्होंने इस रचना के प्रणयन में मुझे प्रोत्साहित किया। इसी संदर्भ में मैं सर्वश्री तिलकराज जी अग्रवाल और पूरनचन्द जी बंसल का अति आभारी हूँ जिन्होंने इस रचना के प्रकाशन कार्य में अपना सहयोग प्रदान किया। इस रचना में मुझे सर्वश्री बालेश्वर जी अग्रवाल, प्रदीप जी मित्तल एवं व्रजनारायण जी अग्रवाल आदि महानुभावों का भी सहयोग प्राप्त हुआ, इनके प्रति मैं अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करता हूँ।

अग्र साहित्य केन्द्र के संचालक श्री सतीशचन्द्र बंसल, मानस मर्मज्ञ श्री राममूर्ति कालिया एवं विदुषी श्रीमती संतोष खन्ना का भी आभारी हूँ जिन्होंने इस रचना के सृजन में अपना सहयोग प्रदान किया है।

अग्रवाल परिषद् रामकृष्णपुरम् नई दिल्ली से मेरा सम्बन्ध इसके स्थापना-काल से ही प्रगाढ़ रहा है। हर्ष की बात है कि इस रचना का प्रकाशन भी इसी संस्था के द्वारा सम्पन्न हो रहा है। साथ ही मैं रचना के मुद्रक सर्वश्री अजय प्रिंटर्स, नवीन शाहदरा, दिल्ली का भी आभारी हूँ जिन्होंने इस रचना का सफल मुद्रण कर इसको पठनीय रूप प्रदान किया।

इसके अतिरिक्त मैं अपने चारों पुत्रों चिरंजीव प्रभात कुमार, राजेन्द्र कुमार, अशोक कुमार तथा विनोद कुमार एवं पौत्र चि० सन्दीप कुमार को इस अवसर पर अपना हार्दिक आशीर्वाद देता हूँ जिन्होंने इस रचना के प्रकाशन एवं मुद्रण कार्य को सम्भव बनाने में मुझे अपना हर सम्भव सहयोग दिया। मैं अपनी धर्मपत्नी श्रीमती कलावती अग्रवाल का भी आभारी हूँ, जिन्होंने इसके सृजन में मुझे अनुकूल वातावरण एवं सहयोग प्रदान किया।

खेद है कि जिस कार्य को मुझे आज से दस वर्ष पूर्व पूर्ण कर लेना चाहिए था, वह कार्य मेरे द्वारा अब सम्भव हो सका, जब मैं ७५ वर्ष की आयु में पहुँच कर अपने को शरीर और मन से शिथिल अनुभव करता हूँ फिर भी यथासम्भव जैसी भी बन पड़ी, यह अग्र-कथा समाज के समक्ष सादर प्रस्तुत है। आशा है कि समाज इसे अपनाएगा। सम्भव है कि इस रचना में वैचारिक मत-भेद, भूल या मुद्रण सम्बन्धी त्रुटि हो, आशा है कि विद्वज्जन तथा उदार पाठक इसके लिए मुझे क्षमा करेंगे।

चिरंजीलाल अग्रवाल

सूची पत्र

प्रथम सर्ग : आदि

चरण	शीर्षक	पृष्ठ संख्या
१.	मंगलाचरण	१७–१८
२.	वंशावली	१८–१९
३.	अग्रसेन का जन्म	१९–२०
४.	युवावस्था	२०–२१
५.	माधवी स्वयंवर	२१–२२

द्वितीय सर्ग : प्रताप नगर

६.	इन्द्र का प्रकोप	२३–२४
७.	प्रताप नगर में अकाल	२४–२५
८.	इन्द्र से युद्ध	२५–२६
९.	अग्रसेन का प्रस्थान	२६–२८
१०.	अपनों से विदाई	२८
११.	माधवी से विदा	२९–३०
१२.	पुरवासियों से विदा	३१–३२

तृतीय सर्ग : यात्रा

१३.	प्रकृति दर्शन	३३–३४
१४.	भारत दर्शन (उत्तर)	३४–३८

चतुर्थ सर्ग : साधना

१५.	एक अद्भुत स्वप्न	३९–४०
१६.	कठिन तपस्या	४०–४३
१७	महालक्ष्मी का वरदान	४३–४६

पंचम सर्ग : वियोग

१८.	शूरसेन की चेतना	४७–४९
१९.	शूरसेन का संकल्प	५०–५२
२०.	माधवी का विरह	५२–५८

षष्ठ सर्ग : मिलन

२१.	नागसुता का विवाह	५९–६१
२२.	प्रताप नगर में स्वागत	६२–६३
२३.	माता-पिता से मिलन	६३–६५
२४.	माधवी-मिलन	६५–६८

सप्तम सर्ग : वैभव

२५.	एक नया उद्‌बोधन	६९–७३
२६.	अग्र-शूर सम्वाद	७३–७५
२७.	राज्याभिषेक	७५–७८
२८.	इन्द्र-अग्रसेन मैत्री	७८–८२

अष्टम सर्ग : शूरसेन

२९.	शूरसेन का तिलक	८३–८५
३०.	बारात प्रस्थान	८५–८९
३१.	पाणिग्रहण संस्कार	८९–९५

नवम सर्ग : दर्शन

३२.	अग्रसेन दर्शन	९६–९९
३३.	भारत दर्शन (दक्षिण)	९९–१०३
३४.	अन्तिम दर्शन (श्री वल्लभ स्वर्गवास)	१०३–१०७
३५.	भारत दर्शन (पूर्व)	१०७–११३

दशम सर्ग : श्राद्ध

३६.	गया श्राद्ध	११४–१२०
३७.	विप्र कुमारी का शाप	१२०–१२२
३८.	भारत दर्शन (पश्चिम)	१२३–१२५

एकादश सर्ग : अग्रोहा

३९.	वीरभूमि दर्शन	१२६–१२८
४०.	अग्रोहा निर्माण	१२८–१३२
४१.	अग्र-राज्य विस्तार	१३३–१३४

द्वादश सर्ग : वंश वृद्धि

४२.	परशुराम का शाप	१३५–१३७
४३.	विश्वामित्र का आगमन	१३८–१३९

४४.	महालक्ष्मी आराधन	१३९–१४२
४५.	संतति एवं शिक्षा	१४२–१४५

त्रयोदश सर्ग : यज्ञ कर्म

४६.	यज्ञ महिमा	१४६–१५५
४७.	सन्तानों के विवाह	१५५–१५७
४८.	अद्‌भुत बलिदान	१५७–१६०
४९.	अहिंसा की विजय	१६०–१६५

चतुर्दश सर्ग : नए समाज का निर्माण

५०.	हिंसा की प्रतिक्रिया	१६६–१६८
५१.	उद्‌बोधन	१६९–१७१
५२.	विभु का राज्याभिषेक	१७१–१७४

पन्द्रहवाँ सर्ग : अवसान

५३.	अग्रोहा से विदाई	१७५–१७७
५४.	स्वर्गारोहण	१७७–१८०
५५.	श्रद्धाञ्जलि	१८०–१८३

षोडश सर्ग : भविष्य दर्शन

५६.	भविष्य दर्शन	१८४–१८९
	आत्म निवेदन	**१९०–१९५**
	जीवन वृत्त	१९७–१९९
	शुद्धि-पत्र	२००

॥ श्रीराम ॥

अग्र-कथा

प्रथम सर्ग : आदि

मंगलाचरण

जय गणेश जय गिरिजा नंदन, करता तुम्हें अनेक प्रणाम।
वन्दन करके परम ब्रह्म का, कहता अग्र-कथा अभिराम॥

मातु शारदा करो कृपा अब, दो निज वाणी का वरदान।
'अग्रकथा' प्रारम्भ करूँ मैं, गाऊँ तेरे सस्वर गान॥

भारत भूमि महा पावन है, लेते जगदीश्वर अवतार।
हरि-निवास हरियाणा सुन्दर, धन-वैभव का जो आगार॥

श्री अग्रसेन की लीला सुन्दर, गूँज रही है कण-कण में।
अग्रोहा की धरती सुरभित होती है जल, थल, नभ में॥

नृपति विभू का सुन्दर शासन, सुखी यहाँ के प्राणी जन।
हुआ आगमन गर्ग ऋषी का, दर्शन करके सभी मगन॥

स्वागत किया भूप ने सादर, पूजा ऋषि को भली प्रकार।
पाया आशीर्वाद गुरू से, प्रगट हुए मुख से उद्‌गार॥

"बड़े भाग्य हैं मेरे भगवन्, हुआ दास का भवन पवित्र।
रोम-रोम हर्षित है मेरा, चाहूँ सुनना पितृ चरित्र॥

करो पूर्ण कामना हृदय की, करता प्रभुवर तुम्हें प्रणाम।
अग्रसेन की पावन गाथा, वर्णन करो सुखद अभिराम"॥

हुए प्रसन्न गर्ग ऋषि सुनकर, नृपति विभू के ये उद्‌गार।
पुलक उठे आचार्य अग्र के, बरस उठी नयनों जल धार॥

"अग्र-चरित है सुन्दर सुखकर, गंगा सम पावन अभिराम।
अग्रोहा के नृपति अग्र का, स्मरण करता पूरण काम॥

ध्यान लगाकर सुनो कथा, कल्याणमयी सुख सम्पति दाता।
भारत माँ के इस सुपुत्र की, गाथा यश समृद्धि प्रदाता"॥

वंशावली[1]

आदि सृष्टि में हुए 'ब्रह्मा', पावन चतुर्वेद निर्माता।
आदि पिता हैं इस जगती के, सबके भाग्य विधाता॥

'विवस्वान्'-'मनु' हुए इन्हीं से, वर्णाश्रम के स्थापक।
'नेदिष्ट-इला' संतति थी जिनकी, सुर-नर-दानव नायक॥

हुए 'मांकील' इसी वंश में, बने हमारे मन्त्र प्रदाता।
रचना करके वेद-मंत्र की, बने धर्म के पोषक त्राता॥

हुआ वैश्य वर्ण धन्य, प्राप्त कर वैभवशाली 'श्री धनपाल'।
परम तपस्वी तेजस्वी जो, प्रताप नगर के शुभ भूपाल॥

दुःख हरा था सब जगती का, किया समर्पण सब कुछ अपना।
कृषि, वाणिज्य, गौ वंश वृद्धि का, पूर्ण किया अपना सपना॥

थे कुबेर सम सम्पतिशाली, वैश्य वर्ण के आदि प्रवर्तक।
कर आयोजन अमित यज्ञ का, बने धर्म के जो रक्षक॥

अष्ट पुत्र इनके महान्, सप्त द्वीप पर था अधिकार।
जम्बू द्वीप के स्वामी 'शिव' थे किया वैश्य-राज्य विस्तार॥

हुए 'समाधि' इसी वंश में, आदि शक्ति के परम उपासक।
जगदम्बा दुर्गा माँ के, श्रेष्ठ भक्त औ' अविचल साधक॥

'दुर्गा-सप्तशती' में जिनका, मिलता है सुन्दर आख्यान।
किया पूर्ण अपना व्रत पावन, मोक्ष प्राप्ति का सुखद विधान॥

१. इस वंशावली की सामग्री डॉ० सत्यकेतु विद्यालंकार द्वारा रचित 'अग्रवाल जाति का प्राचीन इतिहास' में उद्धृत 'उरु चरितम्' से ली गई है। इसके लिए लेखक डॉ० सत्यकेतु जी का अति आभारी है।

विष्णु भक्त 'मोहनदास' ने दक्षिण भारत किया प्रयाण।
राज्य बसाया अपना सुखकर, थे जिनके ओजस्वी प्राण॥

'नेमिनाथ' थे पौत्र इन्हीं के, स्थापित नयपाल किया।
'गुर्जर' नृप ने गुजरात बसाकर, अद्भुत गौरव प्राप्त किया॥

नृपति 'हरी' थे जन्मे इनसे, शत पुत्रों के पिता महान्।
दिया राज्य निज पुत्र 'रंग' को, किया हिमालय ओर प्रयाण॥

हुए क्रुद्ध वे बंधु 'रंग' के, किया उन्होंने अत्याचार।
पाकर श्राप ऋषि 'याज्ञवल्क्य' का, बने सभी थे क्षुद्र, गँवार॥

नष्ट हुआ था गर्व सभी का, यज्ञोपवीत भी भंग हुआ।
करने लगे प्रार्थना ऋषि से, तब उनका उद्धार हुआ॥

किया सभी ने सहस्र वर्ष, योग बद्रिकाश्रम जाकर।
पाया द्विजत्व फिर से सबने, कौन बचा कर विप्र अनादर॥

थे 'विशोक' शुभ पुत्र 'रंग' के, इनसे 'मधु' उत्पन्न हुए।
जन्मे 'महीधर' इसी वंश में, शिव से अनेक वर प्राप्त किए॥

सप्त पुत्र इनके महान्, श्री 'बल्लभ' थे ज्येष्ठ सुवन।
श्री 'अग्रसेन' अरु 'शूरसेन' थे, बल्लभ नृप के कमल नयन॥

गृह उपवन में खिले युगल पुष्प, वैश्य वर्ण अति धन्य हुआ।
प्रताप नगर की भूमि सुहर्षित, भारत गौरववान हुआ॥

सुनी पूर्वजों की वंशावलि, नृपति विभू कृतकृत्य हुए।
नत मस्तक हो गर्ग ऋषी से, आगे करने लगे विनय॥

'धन्य-धन्य है गुरुवर पावन, वंशावलि का किया बखान।
अग्र जन्म की पावन गाथा, सुनना चाहूँ, हे मतिमान्'॥

अग्रसेन का जन्म

हुए प्रफुल्लित गर्ग ऋषी, करके परमब्रह्म का ध्यान।
कहने लगे अग्र गाथा को, सुन्दर सुखमय गौरव वान॥

'बल्लभ' नृप ने संतति हित, श्री शंकर का ध्यान किया।
सपत्नीक व्रत साध अनूपम, श्री दुर्गा आह्वान किया॥

आश्विन मास का शुक्लपक्ष था, प्रथम दिवस था मंगलमय।
चमक उठी चपला-सी नभ में, त्रिविध पवन बहा सुखमय॥

प्रकट हुए शिशु अग्रसेन, बल्लभी मातु थी पुलक उठी।
लखकर के शुभ लाल अनूपम, दिव्य प्रभा थी चमक उठी॥

बजी बधाई शुभ घर-घर में, प्रभु की जय-जयकार हुई।
'बल्लभ' नृप अति हर्षित तन्मय, मनोकामना सिद्ध हुई॥

गर्ग ऋषी ने ग्रह देखे, जन्म-पत्रिका सुखद बनी।
अद्‌भुत पुरुष बनेगा जग का, होगा बालक परम धनी॥

माँ लक्ष्मी की कृपा प्राप्त कर, अति वैभवशाली होगा।
सेना में अग्रता प्राप्त कर, अग्रसेन बलशाली होगा॥

बढ़ने लगा चन्द्र सम बालक, नित्य कला छवि विकसित होती।
सुन्दरता लावण्य प्राप्त कर, अति बढ़ती पावन ज्योती॥

मन था अशांत कुछ सूना-सूना, नहीं खेलने को कोई।
कहता था बालक वह मन में, उर में अति करुणा सोई॥

आया सुन्दर दिवस दूसरा, शूरसेन का जन्म हुआ।
युगल पुत्र पाकर सुन्दर, दम्पति मन कृतकृत्य हुआ॥

अग्रसेन और शूरसेन की, अति अद्‌भुत अनुपम जोड़ी।
वंश बेलि यों बढ़ी नृपति की, विधिना ने थी गति मोड़ी॥

वर्षों तक जो पुत्र हीन थे, श्री बल्लभ करुणा के धाम।
आँगन में दो पुत्र खेलते, सुंदर सुरभित सुखद ललाम॥

युवावस्था

बढ़े पुत्र दोनों आकर्षक, रवि-शशि से थे ज्योतिर्मान।
शब्द नहीं कवि की वाणी में, कैसे रसना करे बखान॥

गौरवशाली बल्लभ नृप थे, प्रताप नगर के सुस्वामी।
धन, वैभव से भरा राज्य, जनता विनम्र अनुगामी॥

ऋषि, मुनि करते यज्ञ सुपावन, होता शुभ नित वैदिक गान।
पूर्ण प्रफुल्लित प्रजा नगर की, सत्य धर्म का सुखद विधान॥

युवक हुए दोनों ही बालक, थे उदीयमान बलशाली।
रूप छलकता था आनन में, ब्रह्मचर्य की थी लाली॥

पाते आशीर्वाद पिता का, माता का मधुभरा दुलार।
गुरुसेवा से हुए कृतार्थ, खुला भाग्य का विस्तृत द्वार॥

राज-काज में बल्लभ नृप को, अग्रसेन देते सहयोग।
सैन्य संगठक शूरसेन थे, करते आयुध अमित प्रयोग॥

कृषी कर्म था सुखकर होता, शस्य श्यामला भूमि हुई।
प्रचुर अन्न उगता धरती में, सुख-समृद्धि-श्री वृद्धि हुई॥

गो माता की सेवा होती, बहती अमल दुग्ध-धारा।
व्यापारी था अति प्रसन्न, भारत गौरववान हमारा॥

'श्री बल्लभ' के मन में उठती, एक लालसा सुखकारी।
अग्रसेन अरु शूरसेन का, होए विवाह मंगलकारी॥

आते थे प्रस्ताव अनोखे, राजवंश के---नागवंश के।
सौंदर्यमयी, सौभाग्यमयी, सुललित सुकुमारियों के॥

माधवी स्वयंवर

नाग लोक के नृपति कुमुद थे, धन, वैभव, विक्रमशाली।
रूपवती माधवी सुकन्या, आलोकमयी, वैभवशाली॥

रचा स्वयंवर राजा ने शुभ, देश-देश के नृपति पधारे।
इन्द्र, वरुण, यम, अग्नि, पवन, मानव स्वरूप सुन्दर धारे॥

वैभवशाली नृपति प्रतापी, रंग भूमि में छाए।
सुमुखि माधवी वरण हेतु, अग्रसेन भी आए॥

रूप राशि अति कन्या सुखकर, नाग सुता सुमुखि छवि खान।
केश राशि घन घटा सदृश थी, विद्युत मुख अति ज्योतिर्मान॥

कंकण, किंकिणि, नूपुर की ध्वनि, जल थल नभ मोहित करती।
रूप सुधा वह बरसाती थी, चंचल हिरणी सी फिरती॥

ललचाए नयनों से उसने, इधर-उधर सब कुछ देखा।
सुर, नर, दानव लखे सभी, बचा न कोई अनलेखा॥

भरा नहीं था मन सुंदरि का, भूल गई वह अपने को।
अग्रसेन वर देखा उसने, ललक उठी पा सकने को॥

धीरे-धीरे कदम बढ़ाए, आकर्षण अति बढ़ता जाता।
विश्व विजय करने को जैसे, रम्भा स्वरूप प्रभा पाता॥

हर्षित मन से अग्रसेन का, सुन्दर स्वरूप उसने देखा।
पूर्ण पराक्रमशाली, गुणमय, दिव्य दर्श अतिशय पेखा॥

सुरभित माला सुमन वृन्द की, युगल करों में शोभित थी।
विजय वैजयन्ती रत्नजड़ित, मन मोहक आलोकित थी॥

बढ़ी माधवी अग्रसेन तक, रोम-रोम था हर्षित होता।
उर का कम्पन झंकृत मोहक, आज जगा था मन सोता॥

श्री अग्रसेन की ग्रीवा में, विजय माल माधवि ने डाली।
पुलक उठी सुंदरि सुकुमारी, बरस रही थी उजियाली॥

हर्षित कुमुद हुए निज मन में, पूर्ण आज संकल्प हुआ।
नाग-आर्य कुल मैत्री का, पूरा आज विधान हुआ॥

पाणि ग्रहण कर अग्रसेन ने, माधवि को था अपनाया।
माथे पर सिंदूर लगाकर, उसका शुभ सौभाग्य बढ़ाया॥

श्री बल्लभ की सफल कामना, अभिलाषा चिर पूर्ण हुई।
महलों में मधु बजी बधाई, सुख-सौरभ की वृष्टि हुई॥

*

द्वितीय सर्ग : प्रताप नगर

इन्द्र का प्रकोप

देवराज थे क्षुब्ध आज, नहीं नींद उन्हें आई।
वेदना पूर्ण था हृदय और आँखों में लाली छाई॥

पांव दावती शची न उनके, मन को आज समझ पाई।
कभी सुलाती, कभी जगाती, कर न सकी वह मनभाई॥

स्वर्ग लोक के नंदन वन में, शयनागार बना अभिराम।
करते विहार थे इन्द्र देव, पर न मिला उनको आराम॥

उर में चुभता शूल एक था, मन माधवि में उलझ रहा।
हुई उपेक्षा खलती थी वह, नष्ट हुआ था स्वप्न महा॥

रूप जाल में फँसे इन्द्र थे, भौरे सम मन कातर था।
पा न सका माधवि पराग को, इसीलिए मन आतुर था॥

याद अहिल्या की आई थी, गौतम की नारी सुंदर।
पाया छल से उस देवी को, किया पाप था आश्रम भीतर॥

स्मृति जाग उठी सुरपति की, "कैसा हूँ मैं देवेश्वर।
हरण कर न सका माधवि का, कहाँ गये मेरे अनुचर॥

अग्रसेन यदि वहाँ न होता, पड़ती माधवि की जयमाल।
सारा दोष उसी का है, क्यों न करूँ उसको बेहाल॥

रूठ जाय यदि पवन उससे, वायु का यदि गर्जन होवे।
अग्नि जलाए सर्व राज्य को, मेघ न बरसे सूखा होवे॥

यदि कराल यम दण्ड पाणि ले, फेंकें अपना पाश प्रबल।
कहाँ बचेगा अग्रसेन तू, होगा क्षण में काल कवल॥

क्यों न चलूँ मैं युक्ति कुटिल, अरु माधवि का हरण करूँ।
देवदूत को भेज उसे मैं, अपने वश में शीघ्र करूँ॥

मेरा विक्रम अतुलित, वैभव तीन लोक में अनुपम है।
नहीं शक्ति कोई वसुधा में, और पराक्रम अद्‌भुत है॥

फेंकूं अपना वज्र धरा पर, चूर-चूर पृथ्वी होगी।
नहीं बचेगा बल्लभ-सुत तू, खण्ड-खण्ड धरती होगी"॥

प्रताप नगर में अकाल

क्रोधित होकर के सुरपति ने, मेघों का आह्वान किया।
मत बरसो प्रताप नगर पर, ऐसा विकट निदेश दिया॥

आया सावन मास धरा पर, एक बूँद भी नहीं पड़ी।
सूखे खेत, सरित, वन, उपवन, पड़ी धूप थी तीव्र कड़ी॥

तरस गये नर नारी पुर के, हाय हाय सब ओर हुआ।
बल्लभ नृप के सर्वराज्य में, चारों दिशि संताप हुआ॥

इन्द्र कोप से कैसे भगवन्! होएगा पुर का उद्धार।
सूखा पड़ा घोर धरती पर, बना सभी का जीवन भार॥

चिंतित थे बल्लभ नृप कातर, करुण स्वर में बोल उठे।
"छाई विपत्ति घोर शासन पर, देवेश्वर हैं अति रूठे॥

कैसे शांत करूँ सुरपति को, नहीं दिखाई देता है"।
हुआ गगन से शब्द तीव्र, ज्यों मेघ गरज कर कहता है॥

"अग्रसेन है अपराधी, निष्कासन यदि होए इसका।
क्रोध शांत हो सकता मेरा, समझो इसमें हित सबका॥

दो माधवि को भेज स्वर्ग में, यह तो भोग्या मेरी है।
सर्वस्व नष्ट हो जाएगा, यदि इसमें कुछ देरी है"॥

क्षुब्ध हुए बल्लभ नभ वाणी से, रोष भभक उनका आया।
आँखें रक्त हो गईं उनकी, क्रोध भाव मन में छाया॥

"पर-नारी पर दृष्टि लगाना, महा पाप है इस जगती का।
पाए सुरपति करनी का फल, घड़ा भरेगा कटु पापों का॥

मर्यादा माधवि मेरी है, पुत्रवधू यह परम ललाम।
देखेगा यदि तू कुदृष्टि से, खोयेगा अमरों का धाम॥

सूखे से नहीं प्रजा डरेगी, जग इसका पुरुषार्थ लखेगा।
बसुंधरा की इस गोदी में, गंगा का उद्‌गम होगा॥

होएगा संघर्ष इन्द्र से, देवराज से बल्लभ नृप का।
स्वर्गलोक की शक्ति झुकेगी, अभिनन्दन होगा श्रम का"॥

इन्द्र से युद्ध

वाणी सुनकर नृप बल्लभ की, कोपा सुरपति, वज्र लिया।
आदेश दिया सुर सेना को, रण चण्डी आह्वान किया॥

विपदा के बादल घहराए, प्रताप नगर का कँपा हिया।
इन्द्रराज की सेना ने, महा विकट संघर्ष किया॥

आह्वान हुआ बल्लभ नृप का, अग्रसेन आगे आए।
सजे युद्ध के साज भयंकर, प्रलयंकर सैनिक छाए॥

गर्व हनन करने सुरपति का, अग्रसेन ने शर छोड़े।
काँप गया था देवलोक, सुरसेना ने मुख मोड़े॥

कोपा सुरपति महाक्रुद्ध हो, प्रबल वज्र का किया प्रहार।
शूरसेन ने तीक्ष्ण शरों से, निष्फल किया इन्द्र का वार॥

उल्का लगी बरसने भू पर, नभ, थल, जल संतप्त हुए।
अग्रसेन अरु शूरसेन ने, दिव्य शस्त्र संघात किए॥

इन्द्रलोक से आग बरसती, प्रताप नगर पर दुखदाई।
जलवाणों की वर्षा करके, अग्रसेन ने विपत्ति भगाई॥

विकट पराक्रम युगल पक्ष का, देख भयंकर विस्मयकारी।
सूर, नर, नाग पूर्ण त्रस्त थे, प्राणों की थी आस विसारी॥

छाया तिमिर भयंकर नभ में, लख न सका कोई आकाश।
दिव्य शस्त्र को चला धरा से, अग्रसेन ने किया प्रकाश॥

डोल उठा आसन सुरपति का, स्वर्ग लोक में त्रास हुआ।
सुन-नर का संग्राम घोर था, प्रबल भयंकर युद्ध हुआ॥

ब्रह्म लोक से नारद मुनि ने, धरती पर था किया प्रयाण।
तीन लोक की रक्षा के हित, अग्रसेन का हुआ आह्वान॥

अनुरोध किया था देवऋषि ने, "बन्द करो अपना संग्राम।
वसुधा का सर्वस्व लुटेगा, अति घातक होगा परिणाम"॥

हुआ युद्ध था बन्द, दुखी अति बल्लभ-सुत मति मान।
सोच रहे थे निज मन में, "मानव है कितना नादान॥

यदि न वरण करता माधवि का, क्यों होता सुरपति से बैर।
प्रताप नगर की जनता पर, क्यों छाते विपदा के ढेर॥

राजवंश की करनी का फल, क्यों निरीह जनता पाए।
क्यों न अन्त हो युद्ध-वृत्ति का, क्यों न त्याग हम अपनाएँ॥

अपने उत्कर्षों के हित, मानव धर्म भाव फैलाए।
साधना-तपस्या के बल पर, क्यों न दिव्य वह बन जाए॥

शांतिपूर्ण निरीह जनता को, मैं न कष्ट में डालूँगा।
देवराज पर विजय प्राप्ति हित, मार्ग अहिंसा पालूँगा"॥

किया संकल्प अग्रसेन ने, "प्रताप नगर से करूँ प्रयाण।
यदि मैं त्याग मार्ग अपनाऊँ, क्यों न विश्व का हो कल्याण"॥

अग्रसेन का प्रस्थान

अपना दृढ़ संकल्प पिता को सहज सुनाया।
अग्रसेन को बल्लभ नृप ने कातर पाया॥

कर आलिंगन पूज्य पिता ने हृदय लगाया।
अश्रुधार बह उठी नयन से अपना प्यार लुटाया॥

"तुम नयनों की ज्योति, हृदय के राग, प्राण से प्यारे।
क्यों करूँ स्वयं से दूर, लाल तुम हो सर्वस्व हमारे॥

क्या दशरथ जी सके, राम को देकर के वनवास।
क्या मैं वियोग सह पाऊँगा, टूटेगा आकाश॥

तजो हृदय से ग्लानि वीर, तुम पूरा करो प्रयास।
उत्साह भाव को धारण करके, पूर्ण करो सब आस"॥

अग्रसेन ने कहा पिता से, "महा भयानक युद्धों की ज्वाला।
क्या वसुधा को शान्ति मिलेगी, पीकर अहंकार की हाला॥

प्रस्थान करूँ यदि प्रताप नगर से, होगा सुरपति शांत।
क्रोध मिटेगा देवेश्वर का, होगा स्थिर, मन भ्रान्त॥

मार्ग अहिंसा का अपना कर, करूँ साधना जीवन में।
वैर भाव को त्याग हृदय से, शुद्ध बनूँ अपने मन में॥

तन को तपा, परिश्रम करके, लक्ष्मी को पाऊँगा।
ऋद्धि, सिद्धि को करूँ प्राप्त मैं, जग में कीर्ति कमाऊँगा॥

माधवी वंश की शोभा है, रक्षा सब मिल उसकी करना।
दुखी न होवे जीवन में, सदा प्रेम से उसको रखना॥

पातिव्रत को धार सती वह, सब सेवा सम्पन्न करेगी।
कुल की मर्यादा पालन कर, दुःख में सुख वह ग्रहण करेगी॥

शूरसेन है बन्धु वीर, रक्षा भार सँभालेगा।
शासन को सबल बनाने में, तन मन प्राण बिसारेगा॥

दो आज्ञा अब पितृ देव, यात्रा निज प्रारम्भ करूँ।
लक्ष प्राप्त हो जीवन में, आशीष तुम्हारा प्राप्त करूँ।

उत्थान वही कर सकता है, जो जीवन में सुख त्याग सके॥
गौरव उसको ही मिलता है, जो तन मन को तपा सके॥

मत करो मोह अपने सुत का, हो हस्त आपका मम सिर पर।
अग्रसेन करता प्रणाम है, कल्याण करें श्री शंकर"॥

करके अभ्यर्थना वल्लभ नृप की, अग्रसेन ने किया प्रणाम।
आशीष दिया छूकर मस्तक, 'पुत्र तुम्हारा हो कल्याण'॥

अपनों से विदाई

लेकर रज चरण कमल की, माता से विदा माँगते हैं।
माँ बल्लभी अश्रु बहाती है, श्री अग्र उन्हें समझाते हैं॥

"तुम दुर्गा शक्ति भवानी हो, मातेश्वरि कल्याण करो।
हँस कर करो विदा सुत को, मन मेरे में उत्साह भरो॥

मैं करूँ सफल अपना जीवन, साधना करूँ माँ लक्ष्मी की।
दो अपना आशीर्वाद मुझे, चिन्ता न करूँ मैं प्राणों की"॥

जननी से विदा प्राप्त करके, शूरसेन से गले मिले।
अपना कर्त्तव्य निभाना अब, मन संकट में न कभी बिचले॥

अपनों की रक्षा करना तुम, सेवा जननी की होना है।
सुख शान्ति रहे इस धरती पर, ऐसी सुव्यवस्था करना है॥

थे विकल शूरसेन दुखी हृदय, आँखों से अश्रु बहाते थे।
अग्रसेन को कर प्रणाम, वे सविनय विनती करते थे॥

"पथदर्शक मेरे सदा रहे, अब मार्ग कौन दिखलाएगा।
हे बन्धु तुम्हारे बिना 'शूर', आलोक कहाँ से पाएगा॥

भूलना नहीं निज सेवक को, तुम याद सदा उसकी रखना।
लक्ष्य प्राप्त हो जीवन में, चिन्ता न कभी घर की करना॥

तुम निर्भय हो प्रस्थान करो, सिद्धि प्राप्त हो जीवन में।
उज्ज्वल भविष्य हो बन्धु तुम्हारा, पाओ सुख निर्जन वन में॥

चिन्ता न करो तुम भाभी की, रक्षा में प्राण विसारूँगा।
पूर्ण सुरक्षण होगा उसका, बंधु वचन मैं पालूँगा॥

जब तक शरीर में प्राण रहे, हे बन्धु प्रतिज्ञा करता हूँ।
जो कार्य अधूरा छोड़ चले, करूँ पूर्ण, वचन यह देता हूँ॥"

माधवी से विदा

महलों में गये श्री अग्रसेन, माधवी जहाँ सुशोभित थी।
आलोकमयी वह दिव्य ज्योति, करती रनवास विमोहित थी॥

वह लक्ष्मी-सी शोभित होती, आलोक प्रकाशित करती थी।
नाग वंश की उस बाला से, वसुधा ज्योतिर्मय होती थी॥

पति स्वागत में वह खड़ी हुई, "धन्य भाग्य प्रभु आए।
दर्शन कर कृतकृत्य हुई, समाचार शुभ क्या लाए"॥

थे विदा माँगते अग्रसेन, "प्रिय अपनी मुझमें शक्ति भरो।
उत्साह भरो निज प्यार सुखद, मेरी तुम जग में विजय करो॥

माँ-लक्ष्मी साधना करूँ मैं, पाने को जीवन में शक्ति।
करूँ उपासना त्याग तपस्या, पाऊँ अविचल पावन भक्ति"॥

मनमोहक माधवि ने नमन किया, अश्रु बिन्दु अविरल झरते।
धोते थे पति के चरण कमल, कुछ करुण निवेदन थे करते॥

"हूँ शक्ति तुम्हारी हृदयेश्वर, मैं छाया तुम आलोक।
कैसे वियोग को सहन करूँगी, अपने मन का शोक॥

मैं शुभ चरणों की आराधक, हूँ विकल संग जाने को।
सेवा का अवसर दो नाथ मुझे, पाऊँ सनाथ मैं अपने को॥

तुम आगे बढ़ना निज पथ में, अनुगमन करूँगी मैं प्रियवर।
संकट की घड़ियों में तजते, सहगामिन मैं हूँ हृदयेश्वर॥

जब छोड़ मुझे तुम जाओगे, होगा नीरस सुखमय जीवन।
क्या इन्द्र न बदला लेगा तुमसे, क्या विकल न होगा मेरा मन॥

देवेश्वर की काम वासना, क्या फिर से तीव्र नहीं होगी।
क्या सती धर्म की रक्षा हित, मेरी शक्ति परीक्षा होगी॥

रक्षा का भार किसे सौंपकर, तुम निर्जन वन में जाते हो।
अपना क्यों पुरुषार्थ भुलाकर, दीन भाव दिखलाते हो॥

क्या वैदेही को त्याग राम ने, निर्जन वन में किया प्रयाण।
क्या छोड़ मुझे जीवनाधार, तुम कर पाओगे कल्याण"?

रुद्ध हुई वाणी माधवि की, बहने लगी अश्रु की धार।
कम्पित शरीर हुआ देवी का, बनी प्रेयसी ग्रीवा हार॥

उद्‌बोधन करने लगे अग्रसेन, "तुम विवेक निधि हो मतिमान।
त्याग स्वार्थ निज जीवन का, बनो उच्च तुम गौरववान॥

संकट में अपना राज्य पड़ा, कठिन युद्ध की यह ज्वाला।
इन्द्र कोप से प्रजा बचे, मैंने यह मार्ग निकाला॥

देवेश्वर को होगी प्रसन्नता, हठ उनका पूरा होगा।
निश्चिन्त रहो प्रेयसि सुंदरी, पूर्ण तुम्हारा रक्षण होगा॥

शूरसेन का बल अनुपम है, इन्द्र न दृष्टि इधर डालेगा।
सती धर्म के रक्षण में, सुरेश न शत्रुता पालेगा॥

विष्णु-प्रिया से आशीष पाकर, करूँ प्राप्त उनका वरदान।
भरूँ राष्ट्र को धन-सम्पत्ति से, बने हमारा देश महान॥

लूट मार हत्याओं से, मानव कल्याण नहीं होता।
युद्धों में रत रहकर के, जग का उद्धार नहीं होता॥

क्षात्र धर्म के साथ जगत में, वैश्य धर्म की ज्योति जगेगी।
कृषि, गोरक्ष वणिज से, निश्चय वसुधा की उन्नति होगी॥

करूँ अहिंसा व्रत्त का पालन, सबको मित्र बनाऊँगा।
'एक ईंट-रुपए' के द्वारा, सहयोग भाव सिखलाऊँगा॥

जीव मात्र की रक्षा के हित, मैं धर्म अहिंसा पालूँगा।
आर्य-नाग मैत्री पालन हित, एक नया व्रत धारूँगा"॥

दो विदा देवि हर्षित मन से, तुम याद सदा मेरी रखना।
है गमन कर रहा अग्रसेन, तुम दुखी न मन में प्रिय होना"॥

पति आज्ञा का पालन करना, माधवि ने स्वीकार किया।
पति चरणों में झुका शीश था, नयनों ने अभिषेक किया॥

पुरवासियों से विदा

महलों से निकले अग्रसेन, था करुण दृश्य अतिशय भारी।
नयनों से अश्रु गिराते थे, दुखी सभी थे नर-नारी॥

विलख रहे आबाल वृद्ध, कर जोड़ विदाई देते थे।
चतुर्वर्ण के लोग वहाँ, निज दुःख प्रगट वे करते थे॥

हवन कुण्ड सब शून्य पड़े, देवालय बन्द हुए सारे।
व्यापार रुका, नगर क्षुब्ध, सब पौरुष थे अपना हारे॥

था बना प्रताप नगर अयोध्या, शोकाकुल सारा समाज।
आशीष विप्रवर देते थे, दे रहे विदाई सभी आज॥

क्षत्रिय समाज था मौन स्तब्ध, वीर भाव अपना भूले।
क्या स्वर्ग लोक से गिरी गाज, सब संकट-झूले में झूले॥

धनी नगर के सब कातर, पुर शोभा चहुदिशि मंद हुई।
सुख की सरिता थी सूख गई, आभा आनन की लुप्त हुई॥

था श्रमिक वर्ग अति भाग्यहीन, अब संरक्षण किसका होगा।
भूखों को अन्न मिले कैसे, जीवन रक्षण कैसे होगा॥

छात्र वर्ग था सोच रहा, शिक्षामृत कौन पिलाएगा।
गृहस्थ सभी थे अनाथ, कर्त्तव्य कौन सिखलाएगा॥

वाणप्रस्थ के व्रती सभी थे, निज आलम्बन खोज रहे।
मानव सेवा होगी कैसे, अपने मन से पूछ रहे॥

सन्यासी तप छोड़ आज, दर्शन करने को आया था।
धर्म स्थापना होगी कैसे, दुर्भाग्य नगर में छाया था॥

जनता का दल बढ़ आगे, था मार्ग अग्र का रोक रहा।
"कहाँ चले हमारे हृदयेश्वर", युवकों का दल यों बोल रहा॥

"अनुचर हम सभी तुम्हारे हैं, आकाश धरा पर लाएँगे।
हम स्वर्ग लोक पर चढ़ करके, सुरपति को मज़ा चखाएँगे॥

हम वीर धरित्री के सुपुत्र, देव लोक प्रस्थान करेंगे।
देवेश्वर को कर बन्दी, इन्द्रजीत पद प्राप्त करेंगे"॥
अग्रसेन ने देखा युवक वृन्द, अश्रुपूर्ण दृग कमल हुए।
कृतज्ञता भाव था उमड़ उठा, सपने निज साकार हुए॥

गम्भीर भाव से वे बोले, "क्यों अधीर तुम वीर हुए।
रक्त पात का युग बीता, क्यों विवेक से हीन हुए॥

बादल जब नभ में आते हैं, घोर अँधेरा है छाता।
फिर वर्षा होती है उनसे, आकाश हरित है दिखलाता॥

युग परिवर्तन मैं हूँ देख रहा, हो उदित वैश्य धर्म सुखमय।
उद्यम रवि होगा आलोकित, तुम सुनो बात मेरी चिन्मय॥

जा रहा खोजने लक्ष्मी को, जो मानव कल्याण करेगी।
पौरुष उद्यम में लगें सभी, अनुपम एक योजना होगी॥

होगी हरित क्रांति धरती पर, श्रम जीवी पुरुषार्थ करेगा।
बंधुत्व, सहकारिता, समता से, नर अपना निर्माण करेगा॥

कर विदा मुझे मेरे साथी, दो अपना प्यार मुझे अनुपम।
शुभ कामना तुम्हारी प्राप्त करूँ, मार्ग मेरा हो सरल सुगम"॥

था विस्मित सारा समाज, नवल स्वप्न अवलोक रहा।
अग्रोहा का दृश्य अनूपम, उत्सुक नेत्रों से देख रहा॥

कर जोड़ विदाई दे रहे सभी, आँखों से आँसू झरते थे।
करते प्रणाम वे प्रेम भरा, जय अग्रसेन की कहते थे॥

संतप्त हृदय से बल्लभ-सुत को, प्रिय परिजन ने किया प्रणाम।
प्रस्थान किया निज नगरी से, शोकाकुल था उनका धाम॥

*

तृतीय सर्ग : यात्रा

प्रकृति-दर्शन

प्रताप नगर से चले अग्र प्रभु, श्री शंकर का लेकर नाम।
मन था मुदित, शरीर स्वस्थ, मुख ज्योतिर्मय रूप ललाम॥

नयन कमल से शोभामय, स्नेह पराग बहाते थे।
बाहु विशाल, कन्धे सुडौल थे, उर उन्नत स्वर साधे थे॥

कानों में कुण्डल शोभित, ग्रीवा में था मुक्ताहार।
बाहों में भुजबन्द सुशोभित, परम प्रसन्नता के अवतार॥

अलकें बिखर रहीं सिर पर, स्वर्ण मुकुट था शोभित होता।
भाव राशि थी उमड़ रही, भृंगों का गुंजन होता॥

धनुष बाण धारण करके, अग्रसेन थे हुलसित होते।
खड्ग लटकता कटि प्रदेश में, वीर भाव से पुलकित होते॥

चरण बढ़े थे यात्रा करने, लक्ष्य दिखाई पड़ता था।
उत्साह उमड़ता था मन में, लहरों का उन्हें निमन्त्रण था॥

प्रताप नगर था ओझल होता, अग्रसेन ने मुड़कर देखा।
नमन किया निज मातृभूमि को, स्नेह भाव से पेखा॥

"शत-शत वंदन जन्म भूमि का, नमस्कार हे सुख-धाम।
पूर्ण करूँ अपना व्रत पालन, अग्रसेन का तुझे प्रणाम"॥

नयनों ने थे अश्रु गिराए, मानो मोती बिखरे थे।
जन्म भूमि की गोदी में, बरसे सुमन सुगन्धित थे॥

अग्रसेन थे आगे बढ़ते, लखते थे गिरि, सरिता, कानन।
छाये नभ में बादल श्यामल, त्रिविध समीर बह उठा पावन॥

यात्रा सुखद बनी मनमोहक, रवि का ताप विलीन हुआ।
ढलते थे दिनकर पश्चिम में, संध्या का आगमन हुआ॥

कलरव करते थे विहंग, लौट रहे थे निज नीड़ों को।
अग्रसेन थे आगे बढ़ते, छोड़ चुके वे निज घर को॥

हुआ अँधेरा था नभ में, निशा नायिका मुसकाई।
कुसुमायुध के दर्शन करके, निज शोभा थी बिखराई॥

स्वागत किया निशा सुंदरि ने, बनी मोहिनी थी छविधाम।
धारण करके तिमिर वस्त्र को, रूप छिपाया सुखद ललाम॥

प्रगट हुआ था शशि अम्बर में, तारक दल ने रास रचाया।
झिलमिल-झिलमिल वे करते थे, अपना सुन्दर दृश्य दिखाया॥

"बहुत चल चुके युवक सजीले, एक रात्रि का हो विश्राम।
मंजिल दूर तुम्हारी यात्री, थके चरण लो तनिक विराम"॥

शशि सा सुन्दर दीप जल रहा, बरसाता जो अमृतधार।
वन देवी अगवानी करती, लुटा रही जो अपना प्यार॥

"स्वागत स्वागत हे नव यात्री, ग्रहण करो आतिथ्य उदार।
कन्द मूल फल का आहार लो, मधुमय जल की बहती धार॥

मज्जन पान करो शीतल जल, दूर करो चिन्ता सारी।
कौन देश से तुम आए हो, प्रकृति वधू तन मन हारी"॥

आश्रम एक सुभग सुन्दर था, देवालय पावन अभिराम।
ठहर गए श्री अग्रसेन, लेकर विष्णु-प्रिया का नाम॥

भारत दर्शन (उत्तर)

प्राची रंजित हुई, अरुण आभा मुसकाई।
चहक उठे द्विजगण, निखिल बसुधा हरषाई॥

त्रिविध समीर बह उठा सुरभित, देता नवजीवन।
नयन खुले श्री अग्रसेन के, था पुलकित तन मन॥

स्मरण करके श्री शंकर का, करते वे गुणगान।
नित्य-कर्म से निवृत्त होकर, किया सहर्ष प्रयाण॥

मन में भाव अमित थे आते, कदम बढ़ रहे आगे।
प्रकृति छटा को लखते वे, नव विचार जागे॥

दृश्य अनूपम सम्मुख आते, चित्रपटी सुखदाई।
करती स्वागत श्रेष्ठ अतिथि का, थी मन में ललचाई॥

चले जा रहे अग्रसेन, भारत दर्शन करते।
पर्वत, सरित, अरण्य पार कर, वे आगे बढ़ते॥

सोच रहे मन में, "कैसे निज संकल्प निभाऊँ।
मानव के कल्याण हेतु, मैं मार्ग कौन अपनाऊँ"॥

करते यात्रा वे स्वदेश की, मन में था उत्साह।
बुला रहा था मानो कोई, थी मिलने की चाह॥

पाते वे रवि से प्रकाश, आलोकित होता था मन।
सुधा बहाता था मयंक, पुलकित था मन तन॥

नदी नर्वदा पार हुए, पहुँचे ओंकारेश्वर।
पुरी मान्धाता की जो, पूजे जगदीश्वर॥

प्रकृति स्थली परम मनोहर, वक्षस्थल-सी उभरी।
झरता निर्झर पातलपानी[1], वन सम्पदा हरी-भरी॥

गहन गर्त में गिरता झरना, सुना रहा संगीत।
अग्रसेन को किया द्रवित था, गा वियोग के गीत॥

इन्दीवर सी इन्द्रपुरी[2] थी, सुखद इंदिरा धाम।
भारत का समृद्धि स्थल है, जिसका ऊँचा नाम॥

---

१. पातालपानी- यह एक झरना है, जो ओंकारेश्वर और मऊ छावनी के बीच में है।

२. इन्दौर।

शस्य श्यामला मालव भू पर, अग्रसेन ने कदम रखा।
महाकाल के दर्शन करके, निज जीवन मंगल निरखा॥

पुरी अवंतिका पुण्यमयी को, शत-शत नमन किया।
पावन सरिता क्षिप्रा में, शुचि स्नान किया॥

वेत्रवती को पार किया, पहुँचे विदिशा धाम।
शिव की पुरी शिवपुरी देखी, तनिक लिया विश्राम॥

मालव ऋषि की पुण्यभूमि लख, गोपाचल[1] सुखदाई।
तपोभूमि जो पावन सुखकर, शुभ्रधरा मनभाई॥

तोमर गृह की भूमि पार कर, ब्रज मंडल में किया प्रवेश।
गोपालों की भूमि निराली, यह गौरवमय देश॥

जहाँ नीलधारा बहती है, यमुना अमृतधार।
पावन थल है ऋषि मुनियों का, सम्पति का भंडार॥

लक्ष्मी की क्रीड़ा स्थली, सुन्दर सुखद धरा।
अग्र तपोवन वैभवशाली, अतिशय सौख्य भरा॥

अग्रसेन ने इस स्थल को, अति आकर्षक पाया।
यमुना के सुन्दर तट पर, 'तेज महाल'[2] बनाया॥

वैश्य वर्ण की भूमि निराली, दिग्-दिगंत यश छाया।
ज्ञान-विज्ञान कला उद्योग था, जिसका अमित सुहाया॥

कृषि, गोरक्षा, वणिज जहाँ, वैश्य वर्ण का कर्म महान।
यह ही है लक्ष्मी उपासना, करे विश्व का जो कल्याण॥

शास्त्रों का अध्ययन सुज्ञान है, उत्पादन है कर्म महान्।
विनिमय, वितरण, सहयोगभाव है, मानव सेवा भक्ति महान्॥

मधु की पुरी निराली देखी, मधुसूदन जहाँ प्रगट हुए।
चन्द्रवंश, अवतंश, कलानिधि, कृष्णचन्द्र उत्पन्न हुए॥

१. ग्वालियर
२. ताजमहल इसी का रूपान्तर है (पी० एन० ओक)

उत्तर दिशि में आगे बढ़ते, अग्रसेन पहुँचे पावन थल।
निगमों[1] का जहाँ बोध हुआ, भारत का जो अंतस्थल॥

नमन किया उस राष्ट्रभूमि को, यमुना के तट पर सुन्दर।
पांडव की रंग स्थली मनोहर, जहाँ योगमाया मन्दिर॥

इन्द्रप्रस्थ की छटा निराली, शिल्पकला जहाँ मूर्तिमान।
राजसूय यज्ञ पावन थल, नाग जाति आवास महान्॥

आगे बढ़े अग्रसेन जी, पहुँचे पावन हर के द्वार।
पुण्यमयी गंगा दर्शन कर, निर्मल हुए विचार॥

किए अनेक यज्ञ थे पावन, श्री शंकर का लेकर नाम।
आलोकित कर ज्योतिधर्म की, बने बुद्धि बल वैभव धाम॥

हुआ अभ्युदय जागी प्रतिभा, नवल शक्ति पा सफल हुए।
बने पुण्य के धाम धर्ममय, कर्मनिष्ठ सद्धर्म हुए॥

ऋषि-मुनि से उपदेश प्राप्त कर, अग्रसेन ने किया प्रयाण।
पहुँचे ब्रह्मावर्त, कर्णपुर[2] जहाँ बसे ऋषियों के प्राण॥

अवधपुरी पहुँचे अग्रसेन, जहाँ प्रगट हुए गुणधाम।
दशरथ-नंदन, रघुकुल-गौरव, मर्यादा पुरुषोत्तम राम॥

पुण्यभूमि को शीष नवाया, अग्रसेन ने स्तवन किया।
शरणागत श्री राम आपका, भक्तजनों को तार दिया॥

तीर्थराज में पहुँच अग्र जी, अपने मन सानंद हुए।
त्रिवेणी में कर स्नान, श्रम-युक्त क्लान्ति विमुक्त हुए॥

अक्षय वट के दर्शन करके, निज जीवन था सफल किया।
भरद्वाज के आश्रम में जा, ऋषि का आशिरवाद लिया॥

पाने जीवन का सुलक्ष्य वे, पहुँचे काशीधाम।
श्री शंकर की पुरी निराली, जिसके रोम-रोम में राम॥

१. निगम बोध (दिल्ली)
२. कानपुर।

करके वंदन अग्रसेन ने, अपना शीश नवाया।
कपिल धारा में महायज्ञ कर, निज स्तवन सुनाया॥

विश्वनाथ की पुरी निराली, भारत की शोभा अभिराम।
हरिश्चन्द्र से सत्यव्रती का, जहाँ गूँजता यशमय नाम॥

निज कर्तव्य सिद्धि पाऊँ मैं, करूँ सुकर्म सुनो महेश।
करुणामय गंगेश्वर जय जय, गौरवमय हो मेरा देश॥

पाया आत्मबोध अग्र ने, महादेव अनुकूल हुए।
यज्ञ, धर्म, कर्त्तव्य, कर्म से, महारुद्र संतुष्ट हुए॥

उत्पन्न हुआ मन में विवेक, भक्ति-भाव मन में जागा।
मिला मार्गदर्शन रुचिकर था, सब संशय मन का भागा॥

"तजो ग्लानि मन की दुखदाई, महामंत्र यह ग्रहण करो।
देवराज को वश करने की, तुच्छ भावना त्याग करो॥

वैश्य धर्म का पावन व्रत है, गृहस्थ धर्म का सुखमय सार।
श्री लक्ष्मी के बनो उपासक, करो विश्व का तुम उद्धार"॥

पावन गिरा सुनी अमृत सम, अग्रसेन कृतकृत्य हुए।
नवजीवन निर्माण हेतु वे, अपने मन अनुरक्त हुए॥

*

चतुर्थ सर्ग : साधना

एक अद्‌भुत स्वप्न

आलोकित थी निशा, चन्द्रमा सुधा बहाता।
ज्योतिर्मय तारागण नभ में, त्रिविध समीर सुहाता॥

घण्टों की ध्वनि शांत हुई, पावन नीरवता छाई।
अग्रसेन थे अति प्रसन्न, गौरीपति महिमा गाई॥

कर भोजन, विश्राम, साधना-मग्न हुए वे।
मंत्र जाप करते शिव का, मुदित हुए वे॥

समाधिस्थ थे, खो अपनापन, सुधि-बुधि भूले।
अनुभव करते कुछ रहस्य, हर्ष डोल में झूले॥

सुनते थे संगीत अनाहद, तन रोमांच हुआ।
स्वप्न अनूपम पड़ा दिखाई, अद्‌भुत बोध हुआ॥

'यमुना सरि मन मोहक, कल-कल ध्वनि में बहती।
था अथाह जल नीलमणि सा, रवि तनया सुंदर दिखती॥

शस्य श्यामला ब्रजभूमी थी, शोभामय अभिराम।
वन्य राशि थी प्रचुर सघन, दिखती आभाधाम॥

लखा स्वप्न में अग्रसेन ने, एक तपस्वी तपता घोर।
त्याग अन्न-जल, दुखा देह को, लखता नभ की ओर॥

हुई अवतरित दिव्य ज्योति, आलोकित सब भूमि हुई।
नवल चेतना जागी भू पर, नव भावों की सृष्टि हुई॥

झुका शीश था तपस्वी का, और मनोरथ सिद्ध हुआ।
पाता आशिरवाद देवि का, अपने मन अति मुदित हुआ'॥

अति विस्मित थे अग्रसेन, कोई आज पुकार रहा।
व्रज-मंडल की दिव्य धरा से, मनमोहक स्वर गूँज रहा॥

हुआ मार्ग दर्शन अनुपम, अग्रसेन अति चकित हुए।
धन्यवाद कर परमेश्वर का, फिर निद्रा में लीन हुए॥

प्रातः हुआ, अरुणिमा छाई, चहुदिशि द्विजगण चहक रहे।
जगे अग्रसेन निद्रा से, सुख-सरिता में सहज बहे॥

महादेव का करके स्मरण, वाराणसि से किया प्रयाण।
दर्शन किए फिर तीर्थराज के, भव बाधा से पाया त्राण॥

कर स्नान त्रिवेणी संगम, माँ गंगा को किया प्रणाम।
पूर्ण मनोरथ करो देव सरि, पुण्यमयी हो तुम अविराम॥

व्रज-मंडल की ओर बढ़े वे, संत जनों की पावन भूमि।
हुए कृतार्थ वटेश्वर लख कर, प्रबल जहाँ यमुना की उर्मि॥

देवेश्वर का किया स्मरण, प्रगट देव-ऋषि हुए वहाँ।
वंदन किया अग्रसेन ने, पाया आशिरवाद यहाँ॥

"पूर्ण मनोरथ सफल तुम्हारे, पाओ सुयश महान्।
करो तपस्या अग्रभूमि में, गाओ विष्णुप्रिया का गान"॥

अति पावन था स्थल सुन्दर, रवि तनया तट परम पुनीत।
लीलास्थल रहा सदा ही, गाता सदा नेह के गीत॥

जन-जन का जो मोहक स्थल, भारत का जो गौरव धाम।
उसी धरा को चुना अग्र ने, अपने तप का थल अभिराम॥

हर्षित होकर अग्रसेन ने, पुण्य भूमि को किया प्रणाम।
महालक्ष्मि का स्मरण करके, लिया प्रथम रात्रि विश्राम॥

कठिन तपस्या

अग्रसेन ने ऋषि मुनियों को तुरन्त बुलाया।
पावन थल में रचो यज्ञ, मंतव्य सुनाया॥

खोज एक रम्य स्थल, शुचिमय सिद्ध धरा।
आचार्यों ने बना वेदिका, पावन कलश भरा॥

स्मरण किया श्री गणेश का, हुआ नवग्रह पूजन।
यमुना जल से अभिषेक, हुआ मंत्रों का गुंजन॥

आवाहन कर सर्व देवता, गूँज उठा संगीत।
सकल मातृका पूजन करके, मन को किया पुनीत॥

उठा यज्ञ का धूम, नभमंडल में छाया।
उमड़ उठे थे मेघ, पवन था बहा सुहाया॥

अविरल सस्वर जलधारा ने, सबका ताप हरा।
हरित प्रकृति की सुषमा से, शोभित वसुन्धरा॥

अग्रसेन ने किया, भूमि का पूजन पावन।
अक्षत, रोली, चंदन, प्रसून से शुभ आराधन॥

कर उपवास, स्मरण किया श्री लक्ष्मी पति का।
करो कृपा नारायण प्रभुवर, सफल मनोरथ हो मन का॥

श्री शंकर का ध्यान किया, माँ अम्बे का स्मरण।
दुर्गा, सरस्वती, लक्ष्मी का, किया भावमय पूजन॥

करने लगे तपस्या अग्रसेन, निज स्वर साधा।
तपा अग्नि से निज शरीर को, दूर हुई बाधा॥

भूल गये अपनी सुधि-बुधि वे, कठिन योग करते।
मंत्र जाप करते निज मन में, कई दिवस बीते॥

स्तुति करते थे लक्ष्मी की, लेते पावन नाम।
"विष्णु-प्रिया जननी सब जग की, सिद्ध करो सब काम॥

करो कृपा, दर्शन दो माता, मन की सुनो पुकार।
करूँ अम्ब कल्याण देश का, हो जननी-उद्धार"॥

लगा ध्यान था अग्रसेन का, चरणों में माता के।
तन मन की सुधि भूल गये, जप रहे नाम जननी के॥

फिर अनुभव हुआ, गर्जना होती, थी तपोभूमि अशान्त।
प्रलयंकर वर्षा होती थी, मन को करती क्लान्त॥

देखा फिर उल्काएँ नभ में, अविरल चमक रहीं।
आलोकित कर सकल भूमि, मन को डरा रहीं॥

अति डरावने दृश्य दिखाई देते साधक को।
"दूर भाग जा, त्याग तपस्या, क्यों नशा रहा जीवन को"॥

एक ओर था सिंह समूह, बढ़ता गर्जन करता।
दूसरी ओर थे वन्य पशु, लख कर मन डरता॥

विकराल निशा में लखे कुदृश्य, अग्रसेन ने दुखदाई।
भूत, प्रेत, पिशाच, दानवों की सेना लड़ने आई॥

नहीं डरे थे अग्रसेन, लगी प्रेम की आग।
सहन कर रहे सभी दुःख, गाकर भक्ति सुराग॥

कुछ क्षण में डर शांत हुआ, दृश्य लुभावन पड़े दिखाई।
पूर्ण चन्द्र था नभ में चमका, शरद चाँदनी छाई॥

था मनमोहक उपवन सुंदर, कामदेव सुख धाम।
करतीं नृत्य अप्सरा मोहक, गातीं गीत सरस अभिराम॥

नग्न प्राय थी कामांगना, देती थीं जो प्रेम निमंत्रण।
"त्याग तपस्या, भोग सुःख को, हो रोमांचित यह तन मन॥

रूप राशि का अमृत पीकर, युवक सलोने मस्त बनो।
न्योछावर हैं हम बालाएँ, जिसको चाहो उसे चुनो॥

जीवन क्षणिक, बिताओ सुख से, प्रेमामृत रसपान करो।
प्रेम अम्बु में हो निमग्न तुम, मन इच्छित फल प्राप्त करो॥

इन्द्रदेव की हम ललनाएँ, तुम पर सभी निछावर हैं।
हैं प्रसन्न अब देवेश्वर, देते वर जो अजर अमर हैं॥

रण कौशल से झुका न तुमसे, व्यर्थ तपस्या युवक तुम्हारी।
अपनाओ यदि हमें सजीले, पूर्ण सभी हो साध तुम्हारी"॥

अग्रसेन थे ध्यान मग्न, जरा न देखा इनकी ओर।
कहने लगे "दूर जाओ तुम, बनो न बाधा संकट घोर॥

नहीं भोग इष्ट जीवन का, इसका अन्त न छोर।
त्याग, तपस्या, कष्ट सहन से, मानव बढ़ता उन्नति ओर॥

नहीं डरूँगा दुःख से, सुन लो, सुःख न विचलित कर सकता।
अग्रसेन संकल्प अटल है, कोई लुब्ध न कर सकता"॥

हार गई सब दुखद शक्तियाँ, काम सृष्टि सब लुप्त हुई।
अग्रसेन की कठिन तपस्या, एक दिवस सम्पूर्ण हुई॥

महालक्ष्मी का वरदान

अग्रोहा में जुड़ी सभा थी, विभु नृपवर का पावन धाम।
ऋषि मुनियों का सुखद आगमन, राजमहल की छटा ललाम॥

व्यास पीठि से गर्ग ऋषि जी, कहते अग्रकथा अभिराम।
दत्तचित्त हो सुनते विभु नृप, बने हुए जिज्ञासा धाम॥

हृदय प्रफुल्लित था राजा का, करता अग्रकथा रसपान।
सुनते थे नर नारी पुर के, परम ब्रह्म का करते ध्यान॥

मंगलमय वह शुभ दिन आया, कठिन तपस्या पूर्ण हुई।
प्रेम-मग्न श्री अग्रसेन थे, विमल चन्द्रिका उदित हुई॥

शांत प्रकृति थी, मंद पवन, हरी-भरी थी वसुंधरा।
तारक गण दिखते नभमंडल, ज्यों मुक्ता का थाल भरा॥

अति पुलकित हो अग्रसेन, महालक्ष्मी का स्मरण करते।
आँखों में थे अश्रु भरे, मुक्तादल जैसे झरते॥

कहते अग्रसेन माता से, "जग जननी दो अपनी भक्ति।
परम ब्रह्म की महाशक्ति तुम, पा ँ मैं तेरी अनुरक्ति॥

पूर्ण करो साधना हृदय की, सागर-तनया विष्णुप्रिया।
दर्शन दो अपना अम्बे, शांत करो संतप्त हिया॥

अखिल विश्व की तुम स्वामिनि हो, सब जग की कल्याणी।
दुर्गा, उमा, शारदा तुम हो, प्रगटो जग जननी"॥

आलोकित हो गया गगन, एक प्रभा थी उदित हुई।
जगमग ज्योति जगी वसुधा पर महालक्ष्मि थी प्रगट हुई॥

"युग-युग में तू प्रगटित होती, करती जन उद्धार।
भक्तों की तू रक्षा करती, हरती वसुधा भार"॥

अग्रसेन ने मंत्रमुग्ध हो, दर्शन कर सुख पाया।
जगजननी का दर्शन कर, अपना भाग्य सराहा॥

'उपवन देखा एक मनोहर, उसमें विशद सरोवर।
निर्मल जल से भरा हुआ, शीतल, मधुर, मनोहर॥

अगणित कमल खिले थे सर में, बहता शीतल मंद समीर।
स्वर्गिक सुख देता प्राणी को, हरता दुखित हृदय की पीर॥

शतदल एक उगा था सुंदर, विस्तृत सर में शोभित था।
उस पर जग जननी बैठी थी, अद्‌भुत वह दर्शन था॥

श्वेत वर्ण के दो कुंजर थे, महालक्ष्मि के दोनों ओर।
करते थे अभिषेक सुहावन, बरसाते जल हुए विभोर॥

चतुर्भुजाएँ थीं जननी की, चारों दिशा सुशोभित थी।
आभूषण परिधान अलौकिक, अतुलनीय अनुपम छवि थी॥

मंद-मंद मुस्काती माता, लिए हस्त में शंख कमल।
तृतीय हस्त था उठा हुआ, चौथा देता आशीश विमल॥

अद्‌भुत आभा, रूप निराला, आकर्षक, मनमोहक था।
जगा प्रेम साधक के मन में, अनुपम वह दर्शन था'॥

"हुई साधना पूर्ण तुम्हारी, नयन खोल कर देखो।
कठिन तपस्या के दिन बीते, अन्तर्मन से पेखो"॥

लखा अग्र ने जग जननी को, नमन किया, हरषाया।
चरणों में नत-मस्तक होकर, निज स्तवन सुनाया॥

"जगे भाग्य मेरे हैं जननी, अखिल विश्व की कल्याणी।
परमशक्ति तू आदि ब्रह्म की, तेरी अकथ कहानी॥

युग-युग में तू प्रगटित होती, करती जन उद्धार।
उमा, शारदा, दुर्गा तू है, हरती वसुधा भार॥

ऋद्धि-सिद्धि मय तू कल्याणी, भक्ति-मुक्ति की दाता।
शत-शत नमन करूँ मैं जननी, अम्बे शीश झुकाता"॥

अति प्रसन्न हो महालक्ष्मि ने, अग्रसेन को अभय किया।
इन्द्र रहेगा तेरे वश में, माता ने वरदान दिया॥

"सर्वजगत में तेरा यश, बन सुगन्ध छाएगा।
भारत माँ का तू सुपुत्र है, जन-जन को भाएगा॥

छोड़ साधना, कठिन तपस्या, गृहस्थधर्म का पालन कर।
होएगा उत्थान अलौकिक, वैश्य धर्म धारण कर॥

लौट नगर अपने साधक, पालन कर तू अपना राज्य।
पहुँच कोलपुर अग्रसेन तू, जहाँ नागपति का साम्राज्य॥

परम सुंदरी नागसुता है, रूपवान गुणखान।
कर रही प्रतीक्षा वह तेरी, वर तू अग्र महान॥

अकस्मात भाग्योदय होगा, सुन नारद संदेश।
करो संधि तुम सुरपति से, मिटे हृदय का क्लेश॥

स्वर्गलोक के देव अमर हैं, प्रभु के भक्त महान।
छोड़ द्रोह उनसे तू सुत, कर अपना उत्थान॥

लक्ष्मी व्रत का पालन कर, तूने निज कल्याण किया।
हरिश्चन्द्र से सत्यव्रती ने, यह ही प्रण था पूर्ण किया॥

पाण्डवगण ने प्रण पालन कर, अपनी विपत्ति भगाई।
लक्ष्मी व्रत जो पालन करता, उसकी कीर्ति सवाई"॥

अग्रसेन ने मंत्रमुग्ध हो, दर्शन कर सुख पाया।
माता का अवलोकन करके, अपना भाग्य सराहा॥

"हुई प्रसन्न पुत्र मैं तुझसे, होंगे सफल सभी अरमान।
अग्रवंश का बन संस्थापक, देती मैं तुझको वरदान॥

होएगा उत्कर्ष अनूपम, ऋद्धि-सिद्धि पाएगा।
अतुलित वैभव प्राप्त करेगा, राज्य सशक्त बनाएगा॥

एक नया गणराज्य बनेगा, अग्रवंश का पिता महान।
सृजन करेगा नवल संस्कृति, जगत करेगा तेरा गान"॥

पाकर के अनुपम वर, अग्रसेन कृत-कृत्य हुए।
बीती निशा, दिवाकर प्रगटे, मनचाहे फल प्राप्त किए॥

किया ईश का वंदन सुखमय, आराधन मन भाया।
लक्ष्मी का वरदान जगत में, सुख, सम्पति, वैभव लाया॥

गर्ग ऋषि ने नृपति विभू को, यह वृत्तांत सुनाया।
महालक्ष्मि के आराधन का, अग्रसेन गुण गाया॥

हुए प्रफुल्लित नृपति विभू, महा हर्ष पाया।
धन्य धन्य है गुरुवर पावन, कहकर शीश नवाया॥

अग्रवाल-जन भक्तिभाव से, जो कमला गुण गाए।
सुख सम्पति को लहे सदा, कीर्ति अमित पाए॥

*

पंचम सर्ग : वियोग

शूरसेन की चेतना

अग्रसेन कर विदा, प्रताप नगर था हुआ विकल।
नैराश्य, दुःख अरु करुणा से, जन-जन था विह्वल॥

उपवन सूने पड़े दिखाई, बन्द हुआ खेतों में काम।
बाजारों में मंदी छाई, बने हुए थे सब निष्काम॥

राजमहल था सूना-सूना, बल्लभ नृप थे कातर।
मातु बल्लभी पुत्र विरह में, हुई पूर्ण आतुर॥

वधू माधवी ने वियोग में, अपनी नींद गँवाई।
निशि दिन झरती आतुर आँखें, विरह घड़ी कटु आई॥

शूरसेन थे सोच रहे, कैसे हो कल्याण।
प्रताप नगर कैसे हो प्रमुदित, कैसे मुकुलित प्राण॥

धैर्य बँधाते नृप बल्लभ को, कर सेवा समझाते।
कार्य नहीं रोने से होते, दुख का भाव मिटाते॥

मातु बल्लभी पुत्र-याद में, पाषाणी बन बैठी थी।
खान-पान की सुधि भूली, कटु वियोग सहती थी॥

शूरसेन ने मृदुल भाव से, माँ में जीवन संचार किया।
अग्रसेन आने वाले हैं, ऐसा उन्हें सुबोध दिया॥

महलों में अन्दर जा करके, माधवि को करते प्रणाम।
"धैर्य धरो मन में श्रद्धामयि, पूर्ण करेंगे ईश्वर काम॥

वधू उर्मिला सी क्यों सहती, जीवन में यह विरह व्यथा।
देवालय में जाकर के, क्यों न सुनो तुम रामकथा॥

सास ससुर की सेवा करके, उन्हें सुःख पहुँचाओ।
घर के सेवक जो स्वच्छन्द हैं, उनसे काम कराओ॥

बंधु गये हैं तप करने, करो कामना उनके हित।
करो प्रार्थना जगदीश्वर से, पाओगी तुम शान्ति अमित॥

पाकर सिद्धि, लक्ष्मी प्रसन्न कर, जब अग्रज घर आयेंगे।
दुखी देख कर तुम्हें वियोगिन, क्या प्रमोद वे पायेंगे॥

जागृत हो आशा मन में, प्रेम वारि से जीवन सींचो।
है सुहावना भावी जीवन, इससे आँख नहीं मींचो॥

नीरस यदि तुम बनी रही, कैसे बंधु दुलार करेंगे।
शुष्क हुआ यदि जीवन उपवन, कैसे इसमें रमण करेंगे॥

भाभी चेतो, देवर की यह, प्रेम-भरी मनुहार सुनो॥
सूखे पड़े वृक्ष उपवन के, सींचो जल, कुछ सदय बनो।

मुस्काओ कुछ मुक्त हँसी से, निज मन में संगीत भरो॥
जीवन सुखद बनाओ अपना, उपवन में कुछ भ्रमण करो॥

कल से हम तुम निकल पड़ेंगे, पुर से बाहर जंगल में।
खेतों में हल कृषक चलाते, भरना रस उनके मन में॥

पुरुषों में पुरुषार्थ भरेंगे, उनसे काम करायेंगे।
चेतना जगा कर नारिवर्ग में, जड़ता भाव हटायेंगे"॥

हँसी आ गई विरहिन को, भाभी कहती, "देवर धन्य।
शून्य अयोध्या में तुम ही हो, रिपुसूदन से चैतन्य॥

दुख में भी हँसते रहते हो, नहीं वेदना सहते।
अपनी सेवा प्रेम भाव से, जीवन में रस भरते॥

युग-युग जिओ, रहो सुखी सर्वदा, पाओ जग में प्यार महान।
सुरकन्या-सी कोई ललना, वरे, तुम्हें दे गोरस दान॥

आज रात को मधुर स्वप्न, देखा मैंने एक अनूप।
बंधु तुम्हारे बढ़े जा रहे, झुकते उनके सम्मुख भूप॥

विजय हार ले कोई सुंदरी, उनको अपना बना रही।
अपना प्यार जता करके, तप से उन्हें डगा रही॥

लक्ष्मी को क्या सिद्ध करेंगे, स्वयं सिद्ध हो जाएँगे।
कर विवाह एक नई दुलहनियाँ, इस नगरी में लाएँगे॥

नींद नहीं आती निशि में, दिन में हृदय नहीं रमता।
स्पर्धा भावना विकट है, कैसे कोई सह सकता॥

यदि विवाह करके दूजा वे, इन महलों में आएँगे।
होंगे निराश वे अपने मन में, मुझे जोगिनी पाएँगे॥

लेकर माला एक हाथ में, हरि का नाम जपूँगी मैं।
बन वैरागिन विरह गान के, सुन्दर गीत रचूँगी मैं॥

जन-जन का कल्याण करूँगी, सेवा का व्रत धार।
सुखी होएगा देश मेरा, जन-जन में फैलेगा प्यार"॥

कहने लगे शूरसेन थे, "क्यों बनती हो पापी।
सपनों की बातें झूठी हैं, करो न मन संतापी॥

खोज करूँगा मैं अग्रज की, जाकर लौटा लाऊँगा।
करुण कहानी मैं भाभी की, दुखमय उन्हें सुनाऊँगा"॥

अश्रु गिराती थी नयनों से, बरस उठे मुक्तागण थे।
विह्वल वाणी हुई सती की, दुखमय वियोग के क्षण थे॥

"छोड़ो देवर मुझे अकेली, जा बाहर पुरुषार्थ करो।
इन्द्र न आए इस नगरी में, वीरोचित कुछ कार्य करो॥

मैं अबला नारी वियोगिनी, मुझे न चन्द्र सताओ।
बरसाते अमृत तुम जग में, मुझे न और जलाओ"॥

संध्या होती देख शूर ने, माधवि को प्रणाम किया।
महलों में से किया गमन, प्रभु सेवा में ध्यान दिया॥

करते विनती श्री शंकर से, "मेरा जीवन सफल करो।
उत्थान करूँ मैं निज नगरी का, ऐसी मुझ पर कृपा करो"॥

शूरसेन का संकल्प

लगे सोचने शूरसेन, "क्या हो गया प्रताप नगर!
त्याग दिया जब अग्रज ने, कौन सँभालेगा यह घर॥

वचन दिया था मैंने जाते, निज कर्त्तव्य निभाऊँगा।
बंधु गये जो छोड़ कार्य, उसे पूर्ण करवाऊँगा॥

मात-पिता की सेवा में, प्रातः-संध्या बीतेगी।
भाभी को प्रसन्न रखने में, कुछ घड़ियाँ तो बीतेंगी॥

कठिन राज्य कर्त्तव्य, करूँगा निज व्रत पालन।
शत्रु न दृष्टि उठाए किंचित्, ऐसा होगा यह शासन॥

युवकों का उत्साह बढ़ा कर, उन्हें संगठित सुदृढ़ करूँगा।
रण कौशल की शिक्षा देकर, राष्ट्र शक्ति मैं सबल करूँगा॥

प्रताप नगर की सीमा की, निशि दिन रक्षा होगी।
शत्रु न कोई घुस पाए, ऐसी पूर्ण योजना होगी॥

है किसान सर्वस्व हमारा, सबका जीवन दाता।
अन्न दान करता सबको है, वह ही राष्ट्र विधाता॥

धरती का उत्तम विकास है, अधिक अन्न उपजाना।
शाक-पात अरु फल-फूलों के, वृक्ष असंख्य लगाना॥

खेती ही लक्ष्मी स्वरूप है, इसकी उन्नति होगी।
प्रचुर दुग्ध की प्राप्ति हेतु, गो-माता की रक्षा होगी॥

होएगा यह नाद राष्ट्र का, काम करो खलिहानों में।
अन्न उगाओ, भूख भगाओ, मेहनत हो मैदानों में॥

ग्राम संगठित होकर के, प्रजातंत्र प्रारम्भ करेंगे।
अपना शासक स्वयं चुनेंगे, निर्भय हो मतदान करेंगे॥

हरित क्रान्ति होगी गाँवों में, उद्योग बढ़ेगा नगरों में।
हस्त-कला अरु यंत्र-कला का, उचित समन्वय हो घर-घर में॥

श्रमिकों का सम्मान बढ़ेगा, श्रम की जय हो जग में।
शोषण नहीं करेगा कोई, सहयोग भाव मानव में॥

शिक्षा का प्रसार होगा, शास्त्रों का आराधन।
देवालय संरक्षित होंगे, और पुजारी पावन॥

होंगे विवाह सभी धार्मिक, विधि-विधान का पालन।
आडम्बर-रहित, उत्साह पूर्ण, सरल, सुपावन॥

सामाजिक नियमों का पालन, प्रति व्यक्ति करेगा।
अनुशासन का पालन होगा, अथवा शास्ति भरेगा॥

सामाजिक-असहयोग, दण्ड है जनता का।
जिसके कारण झुकता, सिर है अति पापी का॥

कोई नर उद्योग बिना, अकर्मी नहीं रहेगा।
जो करता नहीं काम, सदा अपमान सहेगा॥

बेकारी की नहीं समस्या होगी पुर में।
वंश परम्परागत कार्य भी करेंगे सब जीवन में॥

जाति व्यवस्था सदा कर्म पर निर्भर होगी।
कर्मच्युत जो व्यक्ति, उसी की अवनति होगी॥

जन्म महत्त्व रखता जीवन में, होता कुल का मान।
किन्तु कर्म-गुण हीन मनुज का, कहीं नहीं सम्मान॥

सामाजिक सद्भाव बढ़ेगा, होगा कोई न छोटा।
व्यवहार सभी से हो समान, दिखे न कोई खोटा॥

नारि वृन्द का दुःख, माधवी सदा हरेगी।
शिक्षा, गृह कल्याण, शिशु मंगल कर्म करेगी॥

श्रम जीवी का मान बढ़ेगा, होगा उसका आदर।
सेवा ही सच्चा सुधर्म है, ग्रहण करो सादर॥

कोष बढ़ेगा, राज्य सम्पदा होगी जन-जन की।
जो सबसे नीचा है जग में, पहले उन्नति उसकी॥

धर्म भाव जागृत हो सबमें, चाहे वह हो वैदिक-जैन।
वैष्णव, शैव, शाक्त भले ही, किन्तु करे सुकर्म दिन रैन॥

ऊपर से ये पृथक् दीखते, मूल भावना पर है एक।
भारत माँ के सब सुपुत्र हैं, वृक्ष एक अरु डाल अनेक॥

सर्वोपरि है राष्ट्र हमारा, जन-जन की सुधि लेता।
बिखर जाए यदि राष्ट्र शिथिल हो, क्या धर्म दिखाई देता?

अग्रसेन की यह सम्पति है, रक्षा का यह भार महान्।
कर प्रयास मैं वहन करूँगा, मातृभूमि का हो कल्याण"॥

स्तब्ध हुए थे शूरसेन, यह कौन बोलता जीवन में।
आवाज किधर से आती है? क्या बोल रहा जो जन मन में॥

हुआ दूसरा दिवस, शूर ने युवकों का आह्वान किया।
बढ़ो कर्म की ओर, निराशा त्याग, यही संदेश दिया॥

सुप्त शक्ति युवकों की, सुन यह हुई नई।
मैदानों, ग्रामों, नगरों में, श्रम की महिमा व्याप गई॥

प्रारम्भ हुआ यज्ञ कर्म का, श्रम की आहुति पाकर।
प्रगट हुआ फल महाशक्ति का, बरस उठे जलधर॥

शस्य श्यामला हुई भूमि, सोना उगल रही।
काया पलटी प्रतापनगर की, श्रम की जय जयकार हुई॥

माधवी का विरह

करुण रस के आदि कवि, श्री बाल्मीकि महान्।
क्रौंचवध प्रसंग लेकर, किया मार्मिक गान॥

लंकापुरी में मैथिली ने, कष्ट सहे कठोर।
वही सरिता करुण रस की, वेदना की घोर॥

भवभूति ने निज काव्य में, लिखा करुण प्रसंग।
जानकी गलती विरह में, राम के क्षीण होते अंग॥

करुण रस है प्राण कवि का, उमड़ता अथाह।
सींचता सूखी धरा को, प्रबल अश्रु प्रवाह॥

आकृष्ट होता है मनुज, सुन हृदय वेधी शब्द।
सुन करुणधारा मर्मभेदी, राम थे स्तब्ध॥

अस्थियों के शैल को लख, दया सागर राम।
द्रवित हुए, करुणा वही, वन आँसुओं का धाम॥

की प्रतिज्ञा, पुरुषार्थ जागा, उठी भुजा बलवान।
भूमि निशिचर हीन होगी, दलित होगा दानवों का मान॥

पुरुषार्थ यदि असफल हुआ, तो आँसुओं का ढेर।
प्रलय करता सृष्टि भर में, नहीं करता देर॥

हृदय परिवर्तन वस्तुतः है, वैर का उपचार।
शत्रु बनते मित्र हैं, खुलते बज्र से दृढ़ द्वार॥

विप्रलम्भ शृङ्गार सहचर, करुण रस का जान।
कवि विरह प्रसंग में, करते इसी का गान॥

दीन दुखियों की व्यथा में, लखो मधुतम गान।
करुण रस अभिव्यक्त करता, मर्मभेदी तान॥

विरहिणी के गान हैं, करते द्रवित पाषाण।
आह से उपजे गीत मार्मिक, झनझनाते प्राण॥

काव्य का करता सृजन है, वेदना संगीत।
करुण रस उत्पन्न करते, विरहिणी के गीत॥

नृप विभू को कर सम्बोधित, गर्ग ऋषि मतिमान।
माधवी के विरह का, करने लगे यों गान॥

× × ×

हुआ निशा का उदय, दीपमाला आलोकित।
धरती पर था अंधकार, अमावस्या आच्छादित॥

नभ में असंख्य तारे दिखते, पर न हुआ आलोक।
अग्रसेन रवि के प्रकाश बिन, फैला तममय शोक॥

अर्धरात्रि में विकल विरहिनी, निज विषाद को सकी न जीत।
तारे गिन-गिन रात बिताती, यही प्रेम की रीत॥

सपने में देखा सुंदरि ने, एक भयानक दृश्य।
भगा ले चला अग्रसेन को, वे बन गये अदृश्य॥

चीख निकल आई माधवि की, हुआ स्वप्न का अन्त।
विषम वेदना जाग उठी थी, कब आएँगे कंत॥

सूर्योदय फिर हुआ धरा पर, सुखद उजाला छाया।
लख कर माधवि का पंकज मुख, जरा नहीं विकसाया॥

"मेरा सूर्य दूर है मुझसे, कैसे मैं मुसकाऊँ।
कौन देश में मेरा साथी, कैसे मैं उड़ जाऊँ"॥

दुपहरिया में सूर्य तपाता, धरती के उर को।
दारुण विरहा ताप जलाता, माधवि के मन को॥

जैसे मछली बिना नीर के, होकर विकल तड़पती।
माधवि की वह दशा बनी, प्रेम वारि बिन मरती॥

ऐसे वर्ष बिताया विरहिन, दुर्बल हो गई काया।
भूखे रहते दिवस गँवाए, निशि में शोक समाया॥

छः ऋतु—बारह मास

माधवी—
हे सखि! आया मादक **बसन्त**।

उगा चन्द्रमा करता प्रकाश, विरहिन का सुखहर।
क्यों कहता जग उसे सुधाकर, नहीं यह हिमकर, बना तापघर॥

उपवन शोभित पुष्प वृन्द से, निशा नायिका तारों से।
आकर्षण से नारी शोभित, रसना मधुर वचन से॥

पर क्या विरहिन शोभित होती, रत्न जड़ित आभूषण से।
प्रीतम उसका दूर बसा हो, यदि **चैत्र** मास में प्यारी से॥

बैशाख मास सुखमय उनको, प्राप्त किए प्रीतम सहवास।
क्या कुमुदिनी खिल सकती है, जिसका चन्दा नाहीं पास॥

ग्रीष्म की ऋतु बड़ी दुष्ट है, जला रही है वसुधा अंचल।
भट्टी-सी यह धधक रही है, प्रिय वियोग से हुई विकल॥

भोजन की रुचि सभी नसावे, दूर करे तन के अम्बर।
तृष्णा बढ़ती है अन्दर की, सूखी नदियाँ प्यासा सागर॥

जेठ मास आया है सखि, तपा रहा जल, थल, अम्बर।
कैसे सुख विश्राम प्राप्त हो, राधा को बिन नटनागर॥

आषाढ़ मास में बादल छाए, बहती पवन पुरवइयाँ।
बिछुड़ पिया से कैसे रहवे, छोड़ गईं सब सखियाँ॥

वर्षा ऋतु में तपन हृदय की, क्या शीतल होती है।
जले वियोगिनि विरह ज्वाल में, प्रीति न सुखमय होती है॥

उमड़ी नदियाँ, वृक्ष बहाए, हो स्वतन्त्र वह जुलम करे।
ग्राम बहाए, खेत नशाए, घर का सत्यानाश करे॥

विरहा की गति महाभयंकर, युवती का मन करे अशांत।
मर्यादा का बाँध तोड़ कर, पापी **सावन** करता क्लांत॥

सुखद तीज का आया अवसर, कौन झुलाए गौरी झूला।
कजरी की ध्वनि हृदय कँपाती, हृदय शूल दुखमय फूला॥

राखी का त्योहार अनोखा, सुधि-बुधि भूली मैं अपना।
पिया नहीं जब घर में मेरे, मोद बना जीवन में सपना॥

आए भाई किया न स्वागत, रक्षाबंधन भूल गई।
रोली-अक्षत कहीं न पाया, बाल स्मृतियाँ बिखर गईं॥

भादों में सखि घोर अँधेरा, बिजली चमके बादल में।
कहाँ छिपूँ मैं डर कर सजनी, पिया नहीं जब घर में॥

शरद ऋतु मनहर है आई, चन्द्रप्रभा है छिटक रही।
बरसाता मयंक अमृत है, पीकर भी मैं विकल रही॥

शरद चाँदनी छिटक रही है, किन्तु न मिटता तन का त्रास।
कहाँ गया यमुना तट सुंदर, कहाँ कृष्ण-राधा का रास॥

आया **आश्विन** मास धरा पर, वर्षा ऋतु का अन्त हुआ।
मैं वियोग में सखि जलती हूँ, तपता तन ना जाय छुआ॥

कार्तिक की महिमा अपार है, पर हूँ मैं असहाय।
भाग जगे हैं सब जगती के, मेरी किस्मत सोती हाय॥

दीवाली त्योहार अनोखा, जलती दीपों की माला।
जहाँ न प्रेमी घर में होय, कैसे होए उजियाला॥

आई भाई-दोज सुहानी, कौन सजाए मधुमय थाल।
रोली, अक्षत और नारियल, कहाँ से लाऊँ सुरभित माल॥

करूँ तिलक जब मैं रोली से, भाई के शुभ मस्तक पर।
आँसू बिखरे, हुआ प्रकम्पन, याद आ गये हृदयेश्वर॥

घर की लक्ष्मी छोड़ गये वे, देवों की लक्ष्मी पाने।
कौस्तुभ मणि को छोड़ गये, पाने को वे गड़े खजाने॥

हेमन्त ऋतु जीवन में आई, कँपती हूँ मैं असहाय।
गर्म बिछोनों में सब सोते, मैं सोती धरती पर हाय॥

मकर संक्रान्ति मनाते सब हैं, मनमाने पकवान बने।
व्याकुल उर होता है मेरा, लगते फीके मिष्ठान्न घने॥

आया **अगहन** मास सुहाना, अन्नों से भंडार भरे।
व्यापारी परदेश जा रहे, मेरे साजन कहाँ हरे॥

पौष मास आया जगती में, पड़ता असहनीय जाड़ा।
थर-थर काँपे बदन गौरि का, प्रीतम का मन बड़ा कड़ा॥

आई **शिशिर** ऋतु जर्जरित, तरु के पात लगे झड़ने।
वृद्धा प्रकृति दिखाई देती, कचरा-कूड़ा लगा उड़ने॥

परिवर्तन आया वसुधा में, त्रिविध समीर लगा बहने।
ऋतु बसंत शिशिर बन गई, पिय बिन भोग बने सपने॥

सखि **माघ** महीना आया, बसंत पंचमी लाया।
पीला अम्बर धारण करके, कुसुमायुध बन आया॥

सरसों फूट रही खेतों में, धरती का उर फाड़ा।
शस्य श्यामला भूमि हुई, मंद पड़ गया जाड़ा॥

आया **फागुन** मास पिया, करो न अब मनमानी।
नाचें, गाएँ सब नर नारी, मेरी पीर न जानी॥

रसिया यह त्योहार अनोखा, मना रहे सब होली।
रंग, गुलाल, अरगजा डाले, डाले नयनों में रोली॥

कैसे होली खेलूँ प्यारे, आज बन गई भोली।
करो न बहुत निठुर मनमानी, मरूँ जला कर होली॥

जीवित गौरी देखा चाहो, आओ मेरे पास।
छह ऋतु बीती जगते जगते, रोते बारह मास॥

× × ×

विरह व्यथा में षट् ऋतु बीती, बीते बारह मास।
विरहिन तपती रही वर्ष भर, दुख का हुआ न नाश॥

रोती कभी कभी हँसती थी, सब सुधि-बुधि थी भूली।
बिछुड़े पिय की करी प्रतीक्षा, विरह दोल में झूली॥

व्रत, संयम, जागरण किए, स्वर्ण रूप मुरझाया।
निश्वासों को गिन करके, माधवि ने वर्ष बिताया॥

कभी हंस को दूत बनाकर, भेजे थे संदेश।
कभी मेघ से करी याचना, उन्हें सुनाया क्लेश॥

षट्पद से विनती करती थी, "उड़ भौंरे उस देश।
मेरे प्रीतम जहाँ बसे हो, उन्हें सुना मेरा संदेश॥

विरह व्यथा में गौरी तेरी, हे यात्री जल मरी निराश।
यदि लौटेगा तू पाएगा, संतापित उसके निश्वास"॥

शूरसेन ने एक दिवस, सुख संदेश सुनाया।
"कोलपुरी में नाग नृपति ने, स्वयंवर एक रचाया॥

वरण हेतु निज तनया के, देश देश के नृपति बुलाए।
भेज निमंत्रण देश देश में, निज संदेश पहुँचाए॥

सम्भव है श्री अग्रसेन भी, कोलपुरी प्रस्थान करें।
अपने बल, विक्रम, कौशल से, नाग सुता का वरण करें॥

वहीं जा रहा हूँ मैं भी, सम्भव दर्शन हो जाएँ।
करुणामय गाथा पूज्या की, सुन कर कहीं पिघल जाएँ॥

ले आऊँगा साथ उन्हें, पर एक नई भाभी होगी।
कैसे स्वागत होगा उसका, क्या न तुम्हें कुछ उलझन होगी"॥

मुसका कर विरहिन माधवि ने, शूरसेन से प्रगट किया।
"एक म्यान में दो तलवारें, किसने है स्थान दिया॥

नहीं कमी तुममें देवर ! रूपवान हो वीर महान्।
नागसुता को तुम बर लेना, कुछ तो रखना मेरा ध्यान॥

एक बार तुम ले आओ, देवर, विनय यही करती हूँ।
जाने फिर मैं कभी न दूँगी, भीष्म प्रतिज्ञा करती हूँ॥

बन्दी बना उन्हें रखूँगी, क्यों स्वतंत्र हो पाएँगे।
दो-दो दाराओं वाले बन, कैसे हमें निबाहेंगे"॥

"बड़ी बात क्यों करती भाभी, उच्छृङ्खल है पुरुष समाज।
भौंरे सम चंचल मन इसका, पराग पान से इसे न लाज"॥

हँसी माधवी अपने मन में, कहती, "देवर आने दो।
लक्ष्मी तो घर में पहिले से, उन्हें सरस्वती लाने दो"॥

*

षष्ठ सर्ग : मिलन

नागसुता का विवाह

अति प्रसन्न थे अग्रसेन, पाया मन इच्छित वरदान।
करूँ यात्रा कोलपुरी की, हो मेरा अनुपम उत्थान॥

स्मरण किया भक्ति भाव से, श्री नारद जी प्रगट हुए।
किया दण्डवत् अग्रसेन ने, ऋषि से आशीर्वाद लिए॥

"बनो मार्गदर्शक प्रभु मेरे, करूँ कोलपुर को प्रस्थान।
नागसुता का वरण करूँ मैं, हो मेरा भगवन् कल्याण"॥

नारद मुनि ने अग्रसेन का, पथ दर्शन भरपूर किया।
पार किया अग्र ने कठिन मार्ग, नहीं कहीं विश्राम लिया॥

नृपति महीरथ शासन करते, अति अद्भुत थे श्री नागेश।
अति पौरुषमय बलशाली, गौरवमय था भाग्य विशेष॥

दीपावलि-सी शोभा पुर की, आकर्षक अभिराम।
धन वैभव की छटा निराली, बना हुआ था लक्ष्मीधाम॥

उसी महल के सप्त खंड पर, नाग सुता बसती थी।
रूप राशि अपनी फैलाकर, सबको मोहित करती थी॥

जब अपने वह प्रेम गीत, तन्मय हो गाती थी।
एकांत पूर्ण वातायन से, स्वरधारा बरसाती थी॥

मोहित होते देव स्वर्ग के, उसके मुखमंडल को लखकर।
वसुंधरा थी मोहित होती, प्राणों का स्पन्दन सुनकर॥

बेसुध था पाताललोक, सुन कर नूपुर की झंकार।
था त्रिलोक सब वशीभूत, महालक्ष्मि की वह अवतार॥

नृपति महीरथ ने शुभ विवाह के साज सजाए।
आयोजन कर सुखद स्वयंवर, देश देश के युवक बुलाए॥

छद्मवेश में सुर आए, नागलोक के भूप महान।
आए असुर, गंधर्व, यक्ष थे, वसुंधरा के शोभावान॥

स्वागत किया नाग नृपति ने, सबको था आराम दिया।
अभिनंदन होता था सबका, गौरवमय सम्मान किया॥

सबने देखा अति विस्मित हो, अग्रसेन छविवान।
आलोकित करते उत्सव को, प्रतिभाशील महान्॥

प्रताप नगर से शूरसेन ने, आकर पाया मोद।
अग्रसेन से मिले नमन कर, करने लगे विनोद॥

माधवि-सी पा रमणी सुंदर, क्या हुआ नहीं संतोष।
नागसुता के परिणय का, क्या शेष रह गया तोष?

समाधान था किया अग्र ने, शूरसेन संदेह।
"नागसुता के परिणय से, होगा न्यून न नेह॥

माधवी ज्येष्ठ भार्या मेरी, हृदय राज्य की रानी।
नागसुता के परिणय की है, निज उत्थान कहानी॥

लक्ष्मी का यह है प्रसाद, नागवंश की शान।
होएगा अब विवश इन्द्र, सुनो लगा कर कान"॥

पाकर कुशल सभी जनों का, अग्रसेन हर्षाए।
अपने अनुभव सभी सुनाए, शूरसेन मन भाए॥

इतने में कलरव हुआ सुखद, नागसुता शुभ छवि-खान।
झंकृत करती रंग भूमि को, अद्भुत आभा करे प्रदान॥

एक दृष्टि से देख सभी को, उसने बेसुध कर डाला।
अपना सब कुछ खो बैठे जन, पीकर अमिय, हलाहल, हाला॥

अग्रसेन को देख कुँवरि ने, अपना सब कुछ बिसराया।
कल्प वृक्ष को देख लता ने, अपना आलम्बन पाया॥

युगल मूर्ति स्तब्ध हुए, एक दूसरे को लखते।
'सफल हुए अरमान हमारे', नयनों की भाषा में कहते॥

आगे बढ़ कर नागसुता ने, अग्रसेन का वरण किया।
विजय माल को पहना कर, अपना था सर्वस्व दिया॥

राजगुरू ने कहा 'नाग' से, पाणिग्रहण का करो विधान।
मधु वसन्त की सुन्दर ऋतु में, होता है शुभ कन्यादान॥

लगन सुधाई नाग नृपति ने, श्री गणेश का ध्यान किया।
जगदम्बा का कर आराधन, देवों का आह्वान किया॥

मंगल वेला थी विवाह की, वैशाख मास मृगया नक्षत्र।
नागराज ने वल्लभ नृप को, भेजा सुखमय कुंकुम-पत्र॥

बजी बधाई प्रताप नगर में, सुखमय मंगल गान हुआ।
विवाह हेतु श्री अग्रसेन के, वर कुल का प्रस्थान हुआ॥

चली बरात सरित मदमाती, वाद्य-वृन्द का होता शोर।
पहुँचे कोलपुर सभी बराती, लख कर शोभा हुए विभोर॥

स्वागत सबका हुआ सुखद था, पुष्प सुगन्धित रहे बरस।
षट्रस भोजन का आयोजन, लगता था जो मधुर सरस॥

नवदम्पति ने पुलकित होकर, पाणिग्रहण संस्कार किया।
अतिथिवृन्द से आशीष पाने, सबको सादर नमन किया॥

अतुलित धन वैभव प्राप्त हुआ, आगत जन सानन्द हुए।
अग्रसेन संग नागसुता लख, शूरसेन कृतकृत्य हुए॥

नागराज ने सपरिवार, नागसुता को विदा किया।
युग-युग जियो, सौभाग्यवती हो, मधुमय आशीर्वाद दिया॥

स्मरण करके गणनायक का, मुदित बरात ने किया प्रयाण।
प्रताप नगर की ओर चले सब, जहाँ बसे थे इनके प्राण॥

प्रताप नगर में स्वागत

करते मंगल गान प्रभू का, सर्वेश्वर का लेकर नाम।
लक्ष्मी का स्मरण करते, अग्रसेन यश-गौरव धाम॥

नवविवाहिता नागसुता को, वाम अंग में लिए हुए।
अति प्रसन्न उल्लासपूर्ण थे, अपना दल-बल सभी लिए॥

सबसे आगे शूरसेन थे, कोलपुरी से कर प्रस्थान।
मोहक दृश्य अनूपम लखते, आगे बढ़ते अग्र महान॥

मन में अपने अग्र सोचते, क्या पाया जीवन का इष्ट।
हुई साधना पूर्ण और, प्राप्त हुआ क्या जो अभीष्ट?

नागसुता के साथ होगा मेरा जब प्रवेश पुर में।
क्या अभिनन्दन माधवी करेगी, हर्षित हो निज मन में?

उलझ भाव में गये अग्र जी, सैन्य बढ़ रही आगे।
प्रताप नगर था पड़ा दिखाई, नवल स्वप्न जागे॥

जब बरात ने प्रताप नगर में, हर्षित होकर किया प्रवेश।
मंगल ध्वनि होती थी सब थल, मुस्काते जन लख उदित दिनेश॥

पुरजन सब आनन्द-मग्न हो, आगे बढ़ कर आए।
स्वागत करते नवदम्पति का, नवल कमल से विकसाए॥

और झरोखों से नारिवृन्द था, मधुर स्वर से गाता।
करता वर्षा सुमनवृन्द की, रोली, कुंकुम रंग बरसाता॥

पुर के सभी वर्ग के जन थे, करते थे सब जय-जयकार।
ऋषि, मुनि, पुरोहितों से, होता सुखमय मंगलाचार॥

राजभवन का तोरण था, पुष्पमाल से सजा हुआ।
आलोकित था मणिमाला से, नौबत से स्वर पूर्ण हुआ॥

आगे बढ़ कर बालाएँ, हाथों में ले स्वागत थाल।
नवदम्पति अभिनन्दन करती, झुका रहीं सब अपना भाल॥

तिलक किया श्री अग्रसेन के, नागसुता का कर स्वागत।
आरती उतारी युगल मूर्ति की, अति प्रसन्न थे अभ्यागत॥

न्योछावर करते थे पुरजन, परिजन और बंधु बांधव।
पाते विविध दान थे याचक, जिए हमारे राधा माधव॥

अम्बर से राका शशि सुन्दर, बरसाता था सुधा किरण।
अनुपम वितान था शुभ्र तना, हुआ रश्मियों का नर्तन॥

मनमोहक वह रात्रि अनूठी, चहुँदिशि था बजता संगीत।
आलोकित थी दीपावलि, सुखद मिलन के गाती गीत॥

श्री अग्रसेन ने स्वागत पाया, मनोभाव ना जाय छुआ।
हुई साधना पूर्ण हृदय की, भाग्य चन्द्र था उदित हुआ॥

माता-पिता से मिलन

बरस रही थी भाग्य लक्ष्मी, आलोकित था कण-कण।
प्रताप नगर था महा मुदित, बिखर रहा मधुमय जीवन॥

अग्रसेन अरु नाग सुता ने, शूरसेन संग किया प्रयाण।
अनुगमन शील पुरजन परिजन, हो रहा अग्र का यशोगान॥

एक कक्ष में मंद ज्योति थी, केशरिया रंग दीख रहा।
विश्रामस्थल था श्री वल्लभ का, पावन शुचि आगार महा॥

ध्यानमग्न थे दोनों प्राणी, मातु बल्लभी पुलक रहीं।
सुना आगमन अग्रसेन का, आँखें भी थीं चमक रहीं॥

कहती वल्लभ से अग्र जननि, "पलटे भाग्य हमारे हैं।
देख सकेंगे बिछुड़े सुत को, पुण्य प्रताप तुम्हारे हैं॥

प्रभु का करके भजन आपने, मनचाहा फल प्राप्त किया।
सेवा करके मैंने स्वामी, नव जीवन का लाभ लिया॥

महलों में है तप करती, वधू माधवी शोभागार।
सेवा करके शूरसेन ने, दिया हमें है सुःख अपार॥

मंगल वेला आज आ गई, मिलन-यामिनी आई है।
नाग सुता के सहित, अग्र-दर्शन की घड़ी सुहाई है"॥

अति प्रसन्न थे वल्लभ नृप, धन्यवाद प्रभु का करते।
आँखें आतुर, मन उत्सुक था, हृदय विकल प्रतीक्षा करते॥

इतने में कुछ शब्द हुआ, "अग्रसेन प्रिय आते हैं।
नागसुता के सहित मुदित हो, अपना शीश झुकाते हैं"॥

श्री वल्लभ ने देखा सुत, चरणों में प्रणाम करते।
मातु बल्लभी ने पाया, नाग सुता को पग पड़ते॥

धन्य घड़ी यह पुण्यमयी है, दोनों आज कृतार्थ हुए।
नववधू सहित बिछुड़ा सुत पा, दोनों आज सनाथ हुए॥

अग्रसेन को हृदय लगाया, वल्लभ नृप ने आतुर हो।
नागसुता का आलिंगन कर, हुई मुग्ध माँ हर्षित हो॥

उर का थाल सजा अद्‌भुत, प्रेम राग से भरा हुआ।
आशीर्वादों से आलोकित, स्नेह सुधा से पगा हुआ॥

न्योछावर करके प्राणों को, माता ने था हृदय लगाया।
अति प्रसन्न हो वल्लभ नृप ने, अपना तन-मन सभी लुटाया॥

"धन्य हुआ हमारा जीवन, मिटा विरह का रोग।
हुए कृतार्थ वृद्ध जीवन में, लख मणि-कांचन संयोग"॥

वंदन करते अग्रसेन थे, नागसुता विनम्र आनन।
"चरणों में हम झुके तात हैं, प्रस्तुत हैं सप्रेम वचन॥

नागसुता को मैं लाया हूँ, चरणों की सेवा करने!
लाएगी सौभाग्य सफलता, आई यह घर सुख भरने॥

जिस इच्छा को लेकर मैं, गया हुआ था तप करने।
पाया आशिरवाद देवि का, हुए सफल जो थे सपने॥

नागसुता है पावन प्रसाद, विष्णु-प्रिया महारानी का।
होएगा कुल का संवर्धन, यह वरदान जगत जननी का॥

होएगा अब इन्द्र विवश, देव हमारे वश में होंगे।
कभी न सूखा यहाँ पड़ेगा, पूरण सभी मनोरथ होंगे"॥

नाग सुता ने मधुर स्वर से, सास-ससुर स्तवन किया।
चरण वंदना करके उसने, इच्छित वर था प्राप्त किया॥

"अचल तुम्हारा सौभाग्य रहे, पुत्रवती हो तुम गुणखान।
मंगलमय हो वास तुम्हारा, तुम सुखी, समृद्ध और छविवान॥

ईश्वर करे कृपा सब पर, प्रेम सरित में सदा बहो।
श्री महेश कल्याण करे, नित नूतन वरदान लहो"॥

माधवी-मिलन

चले अग्रसेन थे आगे, उनके पीछे नाग सुता थी।
शूरसेन ले चले वहाँ, जहाँ माधवि संतप्ता थी॥

नंदन वन-सा सुन्दर उपवन, जिसमें मनहर महल सुहाया।
'मय दानव' की श्रेष्ठ कला, रूप ललित मनभाया॥

सुन्दरतम था एक कक्ष, ललित कला का जो आगार।
रंजित था वह विविध रंग से, चित्र बने थे भली प्रकार॥

मधुर स्वरों की लय सुन पड़ती, गाए जाते मादक गीत।
वाद्य-वृन्द की स्वर धारा से, मुखरित होता था संगीत॥

मृग शावक थे जहाँ भागते, निर्भय चंचल द्रुत गति से।
शुक-शारिका वार्ता करते, अपनी कुशल सुमति से॥

प्रातः का था समय, देव-गृह में होता आराधन।
श्रेष्ठ माधवी कर रही अर्चना, अपने इष्टदेव का चिन्तन॥

ध्यान-मग्न थी श्रेष्ठ साधिका, विकल दिखाई देती।
बीती अवधि प्रीतम वियोग की, मन में थी कुछ कहती॥

"हुई अवज्ञा मुझसे कैसी, प्रिय ने हाय भुलाया।
मन मंदिर में बसा सकी ना, क्यों मुझको बिसराया?

अम्बर में दिनकर आलोकित, निज प्रकाश से कमल खिलाता।
मेरा सूरज कहाँ छिपा है, मन सरोज को है तरसाता॥

पिया न भूले कभी स्वप्न में, मैं पतिव्रता नारी हूँ।
अपनी त्याग तपस्या से, मैं उनकी एक पुजारिन हूँ॥

आओ मेरे बादल रसमय, एक कृपा मुझ पर कर दो।
सिंचित हो यह तप्त हृदय, नवजीवन इसमें भर दो"॥

"सफल हुई कामना तुम्हारी, और विकलता दूर करो।
लक्ष्मी को ले अग्रज आए, भाभी चल सत्कार करो"॥

चकित दृष्टि से वियोगिन, सहसा उठ आगे आई।
उन्मुक्त हृदय से बरस उठी, बदली बन सावन छाई॥

अग्रसेन को देख माधवी, सुख के अश्रु बहाती है।
अपने आगत अतिथि जनों पर, प्रेम वारि बरसाती है॥

आलिंगन कर नागसुता का, किया स्नेहमय अभिनंदन।
"धन्य भाग्य मधु ऋतु आई, महक उठा मम नंदन वन॥

मनमंदिर में वास करो, हे लक्ष्मी के आराधक।
शून्य भवन न मेरा होवे, आज देव तुम, मैं याचक॥

केवल रूप नहीं वसुधा में, गौरव-गंध बहाता है।
त्याग, तपस्या, सत्कार्यों से, मानव पूजा जाता है।

बाँध सकी ना अपना प्रीतम, मैं अपने मधु भावों से।
प्रसन्न करूँगी मैं अब उसको, अपनी गृह सेवा से॥

फूले-फले प्रेम का उपवन, नागसुता का स्नेह बसंत।
नवयौवन लाए जीवन में, मोहक स्नेह राग मकरन्द"॥

नागसुता ने हर्षित हो, माधवि का सम्मान किया।
दोनों बाहें डाल गले में, उसको अपना प्यार दिया॥

"लक्ष्मी तो तुम ही दीदी हो, इन महलों की महारानी।
मैं तो साथ निभाने आई, कभी न हूँगी पटरानी॥

दो आँखें हम हैं प्रीतम की, गंगा-जमुना की जलधार।
श्रद्धा-इड़ा हम हैं मनु की, लक्ष्मी-सरस्वती अवतार"॥

शूरसेन ने कहा विहँसि के, "कैसा सुन्दर सुखद मिलन।
सपत्नी भाव है लुप्त हुआ, ये तो लगतीं सगी बहन॥

यद्यपि चाहती नारी पति पर, अपना एकमात्र अधिकार।
पर पुरुषों की प्रेम-प्यास का, भी करना होगा उपचार॥

नारी अबला, नर समर्थ है, बन जाता है सहगामी।
सीता-सी भार्या चाहता, पर बना न राम का अनुगामी॥

प्रेम पुरुष का अनुपम धन है, मिल कर के सुख-भोग करो।
कभी न एकाधिकार जमाओ, जीवन को निज सरस करो॥

याद करो तुम भाभी मेरी, कहाँ स्पर्धा भाव गया।
अग्रज को पाकर के मन, क्यों न मानिनी रूठ गया॥

ठगे गये हैं बंधु हमारे, लक्ष्मी ने इनको भरमाया।
नागसुता का शुभ प्रसाद दे, तुमसे पीछा छुड़वाया"॥

नागसुता ने कहा शूर से, "देवर क्यों करते उत्पात।
दीदी को तुम हरा न सकते, हम सबने खाई है मात॥

बड़े चतुर तुम जीत न पाये, मेरा मन मोहक अनुराग।
पर न निराश बनो सजीले, पाओगे जीवन में राग॥

मेरी अनुजा दो-दो हैं, इन्हें यहाँ ले आऊँगी।
बन्दी बना कर तुम्हें उन्हीं से, प्रेम-पाठ सिखलाऊँगी"॥

कहा अग्र ने, "शुभ प्रस्ताव है, पूर्ण समर्थन करता हूँ।
अगले वर्ष शूरसेन का, मधुर स्वयंवर रचता हूँ॥

देश देश की सुन्दरियाँ, समारोह में आएँगी।
निज लावण्य पुष्प चुन-चुन कर अपना हार बनाएँगी॥

तभी हमारा प्रण हो पूरा, एक नया युग हम भी लाएँ।
नारी ही क्यों चुने पुरुष को, पत्नी क्यों न चुनी जाए"॥

हुआ रात्रि का भोज निराला, मधुमय व्यंजन की भरमार।
रात्रि जागरण किया सभी ने, आयोजन थे विविध प्रकार॥

प्रेम भरे शुभ परिणय का, मंगल गान किया सबने।
अम्बर में राकाशशि की, मोहक छवि देखी सबने॥

याद आ गई मधुवन की, जब शरद चाँदनी छाई थी।
ब्रजभूमी में नट नागर ने, मुरली मधुर बजाई थी॥

कंकण, किंकिणि, नूपुर का स्वर, फैल गया महलों में।
नृत्य किया सबने मन भर के, स्वर गूँजा घर-घर में॥

अनुपम थी वह रात्रि मद-भरी, प्रताप नगर में आई।
नर-नारी सब तन्मय थे, घर-घर बजी बधाई॥

राजा-प्रजा का मधुर प्रेम था, अति सुखकर लासानी।
अग्रसेन आगमन सुखद था, अनुपम सरस कहानी॥

*

सप्तम सर्ग : वैभव

एक नया उद्‌बोधन

प्रात समीरण सुख देता है, मन में भरता है उत्साह।
महालक्ष्मि का स्मरण करते, हुआ अग्र में भक्ति प्रवाह॥

माधवि-नागसुता ने मिल कर, अग्रसेन को किया प्रणाम।
मुदित भाव से कहा अग्र ने, होवें सफल तुम्हारे काम॥

तीनों उठे नित्य कर्म कर, किया सरोवर में स्नान।
गायत्री का मंत्र जपा, अरु किया प्रभू गुणगान॥

चले वहाँ जहाँ वल्लभ नृप थे, दर्शन कर सुख पाया।
ग्रहण किया आशीष सभी ने, अंग-अंग पुलकाया॥

इतने में आ गये शूर थे, मात-पिता का वंदन करने।
लख कर अपने अग्रज को वे, कहने लगे वचन अपने॥

"विश्राम कर लिया खूब बन्धु, अब शासन का कुछ काम करो।
प्रताप नगर की सुघर व्यवस्था हो, इसका कुछ ध्यान करो"॥

कहा 'अग्र' ने "शूर व्यवस्था उत्तम सुखद तुम्हारी है।
मात-पिता की सेवा करना, केवल चाह हमारी है"॥

'नागसुता' ने कहा 'अग्र' से "काम करो शासन का।
सेवा कर्म हमारा पावन, इष्ट यही है जीवन का"॥

सुन कर 'माधवि' बोल उठी, "मैं सेवा कार्य सँभालूँगी।
नागसुता करे पति प्रसन्न, मैं सास-ससुर व्रत पालूँगी"॥

कहा 'शूर' ने, "नहीं चलेगी, तुम तीनों की मनमानी।
सेवा तो मेरा सुधर्म है, देखो सब मिल रजधानी"॥

मुसकाए बल्लभ नृप हर्षित, माता पुलक उठी मतिमान।
"क्यों आपस में लड़ते सब हो, करो सभी मिल जन-कल्याण॥

स्वस्थ अभी हमारा जीवन, प्रभु उपासना, तीर्थ प्रयाण।
करने दो हमको स्वमेव ही, रक्षक मंगलमय भगवान"॥

"मुक्त करो हमको बन्धन से, करने दो सेवा प्रभु की।
सफल हमारा जीवन होवे, राह बने मुक्ती की"॥

कहा 'अग्र' ने, "पितृ देव ! सर्व सुखों का भोग करो।
शूरसेन का कर विवाह, अपने मन आनन्द भरो"॥

कहा 'शूर' ने "क्या विवाह ही, जीवन की शुभ गति है।
क्यों आसक्त करें हम मन को, क्या यह ही सम्मति है"?

इतने में आया द्वारपाल जो लाया सन्देश मधुर।
"कुलगुरु आये हैं महलों में, करें सभी स्वागत सत्वर"॥

अति प्रसन्न सब पुलक उठे, सुखकर था संवाद।
स्वागत करने सभी चल दिए, पाने गुरु का आशिरवाद॥

बढ़े आ रहे कुलगुरु पावन, संग लिए अनुयायी।
चरण कमल बंदन कर सबने, शुभ आशीषें पाईं॥

प्रेम प्रफुल्लित गुरु ने हर्षित, अग्रसेन को गले लगाया।
माधवि, नागसुता को लख कर, रोम-रोम था हर्षाया॥

"सौभाग्य बढ़े नित नूतन, पति—स्नेह तुम प्राप्त करो।
गंग-जमुन में जब तक जल है, तब तक जीवन में आनंद भरो"॥

बल्लभ नृप अरु मातु वल्लभी ने पाया आशिरवाद।
"सदा बढ़े यश गौरव पावन, होवे जय-जय नाद॥

वृद्ध हुए अब तुम दोनों ही, निवृति भाव अपनाओ।
राज्याभिषेक कर अग्रसेन का, निज कर्तव्य निभाओ"॥

शूरसेन को हर्षित होकर, गुरु ने आशिरवाद दिया।
"सफल मनोरथ होय तुम्हारे, सराहनीय सब काम किया"॥

"जिस उद्देश्य से प्रेरित होकर, अग्रसेन ने छोड़ा धाम।
सिद्ध किया लक्ष्मी को उसने, पूर्ण किए सब इच्छित काम॥

नागसुता को प्राप्त किया, यश गौरव की वृद्धि हुई।
नृपति महीधर बने पक्षधर, राज्य शक्ति संपुष्ट हुई॥

लाभ इसी अवसर का सबको, उचित उठाना होगा।
सुर-नर-नाग त्रिवर्ग का, सुदृढ़ संगठन करना होगा॥

रेखायें भविष्य की पढ़ता, चेतावनी दे रहा प्रबल।
अन्धकारमय भावी जीवन, देख सकोगे तुम हलचल॥

दक्षिण की दानवी शक्तियाँ, विकट रूप धारण करके।
फैल रही हैं वे आगे, आर्य संस्कृति धूमिल करके॥

जो चाहो तुम अभ्युत्थान, अरु रक्षण निज संस्कृति का।
मन-मुटाव को त्याग सुदृढ़ हो, भाव आर्य-सुर मैत्री का॥

सम्भव है कुछ दिन में ही, प्रताप नगर नष्ट हो जाए।
रक्षा न हो सके इसकी कुमार, पराधीन वह बन जाए॥

सावधान होकर के तुम सब, एक नवल पुरुषार्थ करो।
उत्तर दिशि में कर प्रवेश, अब आर्य देश उद्धार करो॥

पर सफल तभी हो सकते हो, जब सुरपति से संधि करो।
देव शक्ति सहयोग प्राप्त कर, अपना तुम उत्थान करो॥

यज्ञ करो सब आर्य-भूमि में, सुर होंगे सन्तुष्ट।
बरसायेंगे सुखद मेघ जल, होवे जन-जन तुष्ट॥

अध्ययन कर इतिहास देश का, निर्मित हो गणराज्य।
समता का हो भाव उदित, होवे सुखी समाज॥

वैशालक है वंश तुम्हारा, वैश्य वर्ण पावन।
करो प्रसार निज संस्कृति का, जो दुख-दैन्य नशावन॥

लक्ष्मी कुल देवी समर्थ है, करो अर्चना सुखदाई।
एक नया आदर्श ग्रहण हो, न्याय नीति मन भाई॥

होएगा कल्याण तुम्हारा, सफल तुम्हारा हो यह वर्ष।
करता मैं भविष्यवाणी हूँ, अपनाओ सब नव आदर्श"॥

सावधान हो वल्लभ-कुल, विस्मित हो सुनता था।
अग्रसेन थे ध्यान-मग्न, सम्मुख इक सपना था॥

'देखा बढ़ते जाते थे वे, पहुँचे एक धरा पर।
जहाँ खेलते सिंह शिशु, करते प्रहार हस्ती पर॥

वीर-भूमि इक गौरवशाली, अग्रसेन ने देखी।
संकल्प किया अपने मन में, थी घटना अनलेखी॥

इसी भूमि पर नवल राज्य का, हो शुभ स्थापन।
एक सुरम्य नगर निर्मित हो, लक्ष्मी का आराधन॥

समाजवाद का दर्शन पावन, होगा यहाँ आलोकित।
दूर हटेंगे भेद-भाव, अरु रहे न कोई शोषित'॥

कुलगुरु के चरणों में अग्रसेन ने अपना शीष झुकाया।
कर्तव्य करूँगा अपना पावन, यह मंतव्य सुनाया॥

शूरसेन ने कहा, सुदृढ़ हो, "सैन्य शक्ति की वृद्धि करूँगा।
शत्रु न कोई करे आक्रमण, मैं अविचल रक्षक हूँगा"॥

कहा माधवी ने सत्वर हो, "नारी की मैं शक्ति बनूँगी"।
बोल उठी नागसुता सुतत्पर, "चिरबंधन मैं नष्ट करूँगी"॥

करने लगे गान सब मिल कर, स्वर लहरी थी गूँज रही।
पुलका रोम-रोम था तन का, सरस रागमय हुई मही॥

सामूहिक गान

जन-जन में हम ज्योति जलाएँ,
निज समाज को सुदृढ़ बनाएँ।
समता का सन्देश सुनाएँ,
रूढ़ि-ग्रंथियाँ सभी नशाएँ॥

करते हैं संकल्प अटल,
बने हमारा राज्य महान्।
त्याग, तपस्या और परिश्रम,
करें राष्ट्र का शुभ उत्थान॥

× × ×

अति प्रसन्न थे कुल गुरु महान्, हो प्रसन्न कर रहे गान।
"धन्य धन्य भारत सन्तान, सदा तुम्हारा हो कल्याण"॥

विदा हुए कुलगुरु महलों से, राजवंश कृतकृत्य हुआ।
अग्रसेन अरु शूरसेन को, एक नया उद्‌बोध हुआ॥

अग्र-शूर सम्वाद

संध्या का था समय गगन में, चमक रही तारकमाला।
महलों में श्री अग्रसेन के, आलोकित था विमल उजाला॥

मनहर स्वर में वाद्य यंत्र, सुमधुर ध्वनि करते थे।
नागसुता अरु माधवी संग, अग्रसेन चर्चा-रत थे॥

विषय आज का कुछ गम्भीर था, कैसे जन कल्याण करें।
निज सेवा अरु कुशल कर्म से, कैसे पुर में शान्ति भरें॥

अग्रसेन कहते माधवि से, "घर का भार सँभालो तुम।
नागसुता के संग जन-जन की सेवा करूँ, धर्म उत्तम"॥

कहती माधवि अग्रसेन से, "बाहर बहुत रहे हो।
मैं करती जनता की सेवा, नागसुता संग तुम गृहस्थ हो"॥

इसी समय आ गये शूर, भाभी क्या है विषय प्रसंग।
"हम तुम दोनों सेवा-रत हों, नागसुता रहें अग्रज संग"॥

कहा 'शूर' ने "समय अल्प है, एक सुखद् सम्वाद सुनो।
राज्याभिषेक की करो तैयारी, अपने मन में सभी गुनो॥

कुल पुरोहित संकेत दे गये, उस पर सब मिल ध्यान करो।
सुखद कर्म को सफल बनाने, सब मिल करके काम करो"॥

हुई प्रसन्न युगल सुन्दरियाँ, "देवर शीघ्र उपाय करो।
सिंहासन पर अग्रज बैठें, ऐसा नवल विधान करो"॥

अग्रसेन ने कहा, "नहीं हो सकता राजतिलक।
पितृदेव क्यों तजें सिंहासन, सबके हैं वे अधिनायक"॥

कहा 'शूर' ने "सिंहासन से, क्यों कतराते तात।
ग्रहण करो शुभ राजदण्ड को, शुभ मुहूर्त में प्रात"॥

कहा अग्र ने, "छोड़ चुका हूँ, प्रताप नगर का मोह।
ध्यान करो गुरु-वाणी का, करूँ न पितु से द्रोह॥

दिया वचन है इन्द्रदेव को, अग्रसेन-निर्वासन का।
क्यों उसका उल्लंघन होए, ध्यान करो मेरे प्रण का॥

मैं तो केवल मिलने आया, पितृ चरण-रज अभिलाषी।
देख सका निज पुरजन परिजन, सेवारत तुम गुणराशी"॥

कहा शूर ने "क्यों तजते हो, अपनी सुखद धरा।
शक्ति हमारी हुई प्रबल है, सुखमय वसुंधरा॥

नहीं द्रोह है देव-शक्ति से, हैं वे सब अनुकूल।
भूल गये देवेश माधवी, हमसे नहीं प्रतिकूल॥

द्रोह भाव यदि होता, क्या जाते नहीं स्वयंवर में।
नागसुता का वरण न करते, हर्ष न होता उनके मन में॥

लक्ष्मी का वर प्राप्त हुआ है, सुरपति को है ज्ञात।
इच्छुक हैं वे अग्र-सन्धि के, मानो मेरी बात॥

सिंहासन पर जब बैठोगे, होगा सिर पर मुकुट धरा।
हर्षित होगी पुर की जनता, सब कुछ होगा हरा-भरा॥

राजतिलक की स्वीकृति दो यदि, पालन हो गुरुवाणी का।
नई शक्ति हो जाग्रत पुर में, भाग्योदय हो हम सबका॥

होगा उत्सव यहाँ सुखद, अरु आयोजन भारी।
पाओगे सम्मान अनोखा, मधुमय मंगलकारी"॥

माधवि और नागसुता ने, शूरसेन का किया समर्थन।
सिंहासन पर अग्रसेन का, करें सभी जन अभिनन्दन॥

अग्रसेन ने गम्भीर भाव से, आयोजन स्वीकार किया।
प्रताप नगर के शुभ शासन का, अपने सिर पर भार लिया॥

राज्याभिषेक

सुना रहे थे गर्ग ऋषी जी, सुन्दर अग्र कथा को।
नृपति विभू हर्षित सुनते थे, पूर्वज की गाथा को॥

कल्पना लोक में विचर रहे थे, नृपति विभू मतिमान।
अग्र-चरित्र के दृश्य सुहावन, देख रहे सज्ञान॥

कहा ऋषि ने राजतिलक की, है गाथा सुखदाई।
प्रताप नगर में राज्य-लक्ष्मी, उतर स्वर्ग से आई॥

शूरसेन ने हो पुलकित, राजतिलक का साज सजाया।
माधवि-नागसुता ने मिलकर, सब समाज हरषाया॥

नौवत राजद्वार पर बजती, मधुर ध्वनि शहनाई।
नवल वधू सम सजी पुरी थी, सबके मन अति भाई॥

कुलगुरु ने प्रभु स्मरण कर, शुभ मुहूर्त का शोध किया।
राजतिलक की सामग्री को, परिजन ने एकत्र किया॥

सभी तीर्थ के जल थे आए, औषधि, वनस्पतियाँ सारी।
मणि-माणिक, नवरत्न अनोखे, स्वर्ण, रजत धातुएँ न्यारी॥

हाथी, घोड़े, ऊँट सजे थे, जिन पर बैठे थे असवार।
सभी अन्न के पुंज लगे थे, फल-फूलों के थे अम्बार॥

देव मन्दिरों में आराधन, होता था पावन अभिषेक।
सभी मांगलिक वाद्य बजे थे, शोभित रथ-सारथी अनेक॥

चतुरंगिनी सेना थी प्रस्तुत, होता था शंखों का नाद।
आलोकित थे रवि अकाश में, फैल रहा था सुख सम्वाद।।

'राजतिलक की यह बेला है, मंगलमय सब साज सजो।
पुर नर-नारी महामुदित हो, सस्वर बाजे सुखद बजो'।।

शुभ मुहूर्त आया सुखमय, अग्रसेन है मुदित पधारे।
भव्य स्वरूप होता आलोकित, वस्त्र विभूषण अनुपम धारे।।

जय-जयकार किया द्विजवर ने, बजने लगा सुखद संगीत।
वेद ध्वनि थी हुई सुपावन, पूजन होने लगा पुनीत।।

अग्रसेन नतमस्तक बैठे, शिव को शीश नवाया।
श्री गणेश का पूजन करके, रोम-रोम हर्षाया।।

नवगृह पूजन, दिग्पालों का, करते पावन आराधन।
वरुण, कुवेर, रवि, शशि का पूजन, किया सप्तऋषि वंदन।।

वेद-मंत्र द्विजवर थे कहते, हुआ साम-गायन।
आवाहन कर परम ब्रह्म का, किया शक्ति अभिनन्दन।।

हुआ षोडषोपचार पूजन, जगदीश्वर-श्रीपति का।
अर्घ दिया, पावन जल, रोली, अक्षत, चन्दन, पुष्प, धूप का।।

किया समर्पण दुग्ध, मधु, जल, दधि, व्यंजन विविध प्रकार।
अगर, कपूर जलाये सुरभित, भेंट नारियल, पुष्पक हार।।

हुई भेंट दक्षिणा स्वर्ण, रजत, मुद्रा एवं रत्नों की।
पीताम्बर, मृगचर्म, रेशमी, ऊनी, सूती वस्त्रों की।।

हुई आरती विश्वेश्वर की, लक्ष्मीपति सर्वेश्वर की।
स्तुति करने लगे सभी जन, राघवेन्द्र सीतापति की।।

"परम पूज्य परमेश्वर जगपति, जगदीश्वर हे! तुम्हें प्रणाम।
सकल जगत के सृजनहार तुम, पोषक और विनाशनहार।।

आयोजन यह परम सफल हो, लीलाधर, विश्वम्भर।
राज्याभिषेक हो मंगलकारी, अग्रसेन का विश्वेश्वर"।।

दिग-दिगन्त में शब्द हुआ, सुखमय मंगलकारी।
"अग्रसेन है भक्त अनूपम, गौ-ब्राह्मण हितकारी।।

लक्ष्मी की है कृपा सर्वदा, भारतीय संस्कृति पोषक।
भारत माता का सुपुत्र है, ऋषि-मुनियों का तोषक।।

होएगा कल्याण सभी का, अग्रसेन के शासन में।
मनोकामना सफल सदा हो, उसके शुभ जीवन में।।

अभिनन्दन हो नए नृपति का, मंगलमय अभिषेक करो।
आशीर्वाद है आदि ब्रह्म का, सब मिल इन्हें प्रणाम करो।।

ईश्वर का आलोक सदा, नृपति में सर्वकाल रहता है।
उसी शक्ति के कारण, वह जग में शासन करता है।।

जनता को नारायण समझो, दीन-दुखी को सब भगवान।
इनकी सेवा से ही होता, शासक का शुभ कल्याण"।।

हुई पुष्प वर्षा थी नभ से, जलधारा थी बरस रही।
नवजीवन आया वसुधा में, ज्योतिर्मय हो रही मही।।

विस्मित थे सब प्राणी जन, अग्रसेन अभिषेक हुआ।
सप्त समुद्रों के जल, औषधि, दधि, दुग्ध, मधु स्नान हुआ।।

दिव्य वस्त्र अरु अलंकार से, श्री अग्रसेन सुशोभित थे।
सिंहासन पर बैठे नृपवर, शस्त्र-अस्त्र से युत थे।।

दक्षिणांग में शोभित माधवी, नागसुता थी बाईं ओर।
ऋद्धि-सिद्धि श्री गौरवमय थी, सब समाज लख हुआ विभोर।।

उठे गर्ग ऋषि विप्रवृन्द युत, राजतिलक का किया विधान।
केशर से था तिलक लगाया, हुए अग्र थे गौरववान।।

चमक उठी थी दिव्य छटा, आलोकित शुभ आनन था।
पाकर ऋषिवर से आशीष, पूर्ण प्रसन्न हुआ मन था।।

वल्लभ नृप ने अति पुलकित हो, सुत को आशीर्वाद दिया।
मातु वल्लभी ने हर्ष विभोर हो, सुत का मुख था चूम लिया।।

शूरसेन ने उन्मुक्त हृदय हो, बरसाए रत्नों के ढेर।
माधवी-नागसुता दोनों ने, प्रेम राग था दिया बिखेर॥

जय-जय ध्वनि होती, पुर में, राजतिलक सम्पन्न हुआ।
होने लगी सुधा की वर्षा, भारत गौरववान हुआ॥

आनन्दमग्न थे सब पुरवासी, अगणित पुरस्कार पाते।
यशोगान थे चारण करते, अग्रसेन की कीर्ति सुनाते॥

चरण वंदना मात-पिता की, अग्रसेन ने समुदित की।
आशिरवाद लिया गुरु जन से, जन-जन की अभ्यर्थना की॥

आभार प्रदर्शित किया अग्र ने, अपने को सेवक माना।
जनता को नारायण समझा, जन सेवा का व्रत ठाना॥

निशा नायिका सज कर आई, तारे चमके अम्बर में।
धरती पर दीपावलि दमकी, चमकी आशाएँ उर में॥

उतरी लक्ष्मी स्वयं धरा पर, बनी हुई थी शोभागार।
आलोकित थे रंग-बिरंगे, उज्ज्वल दीपों से घर-द्वार॥

हुआ अलौकिक राजतिलक था, मंगलमय उन्नति का द्वार।
जग जीवन का श्रेष्ठ समारोह, राष्ट्रोन्नति का आगार॥

इन्द्र-अग्रसेन मैत्री

अग्रसेन की कीर्ति कौमुदी, जल-थल-नभ में फैली।
बल-विक्रम की हुई वृद्धि, आशा लता नवेली॥

प्रताप नगर का वैभव, द्विगुणित होकर चमका।
नागसुता शुभागमन से, भाग्य राज्य का दमका॥

नीलमणि-सी उसकी आभा, करती थी आलोक।
महालक्ष्मि-सी तेज पुंज वह, हरती सबका शोक॥

अन्न-धान्य की प्रचुर राशि थी, प्रताप नगर में आई।
कोष बढ़ा था धनपति जैसा, सुख-समृद्धि थी छाई॥

राजतिलक उपरान्त अग्र के सुखमय दिन थे आए।
पाते माधवि प्यार और नागसुता मन भाए॥

इन्द्रलोक में कीर्ति अग्र की सुरभि पवन-सी पहुँची।
सुरपति के मन की उलझन, उठ खड़ी हुई समूची॥

माधवि का आकर्षण अब भी, देवराज को पीड़ित करता।
अग्रसेन के रण कौशल से, फिर भी था वह डरता॥

असुरों के आक्रमण सदा ही, देवलोक में होते।
करते भयाक्रांत सुरपति को, रात्रि नहीं वे सोते॥

कहा शची ने "स्वामी मेरे, तुम विवेक से काम करो।
परनारी से आकर्षित हो, क्यों तुम अपना सुःख हरो॥

यदि तुम संधि करो अग्र से, और माधवी करो अभय।
उसको अपनी बहिन बनाओ, और बनो उस पर सहृदय॥

तो अशांति मन की त्यागोगे, पाओगे सुख शान्ति।
दूर होएँगे कष्ट तुम्हारे, और मिटेगी भ्रान्ति॥

आर्यों का सहयोग प्राप्त हो, नागवंश बंधुत्व भाव।
असुर नहीं कुछ कर सकते हैं, दूर होएँगे विकट अभाव॥

करो अग्र सन्तुष्ट और स्थापित हो मैत्री भाव।
स्वर्गलोक के त्रास मिटेंगे, और बढ़ेगा शुभ सद्भाव"॥

प्रेयसि की यह बात इन्द्र को, कर सकी प्रभावित।
देव सभा में हुई मंत्रणा, सबसे हुई समर्थित॥

"ऋषि नारद को भेज धरा पर, करो संधि की बात।
अग्रसेन स्वीकार करे, दूर सभी हों संकट तात"॥

देवेश्वर ने किया स्मरण, नारद मुनि हो गये प्रगट।
स्तुति करने लगा इन्द्र था, "टाल सकोगे तुम संकट॥

असुर जाति से युद्ध हो रहा, स्वर्गलोक भयभीत।
आर्य सहायक हों विपदा में, ना होवे विपरीत॥

करो कृपा ऋषिवर पावन, जाओ अग्र नृपति के पास।
पहुँचाओ सन्देश हमारा, दूर करो मम त्रास॥

आर्य-नाग-सुर मैत्री होवे, ऐसा नवल विधान करो।
अग्रसेन के साथ सन्धि हो, उनमें ऐसा भाव भरो॥

बहिन मानता मैं माधवि को, नागसुता का करता मान।
सुख से राज्य करे अग्रसेन, देता मैं हूँ अभयदान"॥

आश्वासन दे नारद मुनि ने, प्रताप नगर को किया प्रयाण।
वीणा के स्वर गूँज रहे थे, करते नारायण का गान॥

स्वागत किया ऋषी का नृप ने, पूजा उन्हें विविध प्रकार।
बड़े भाग्य जो मुनिवर आए, करी कृपा क्या हो सत्कार॥

कहा ऋषि ने, "नृपति सुखी हो, पाओ सुख-सम्पति भंडार।
निर्भय हो तुम राज्य करो, करे न कोई शक्ति प्रहार॥

नागसुता से कर विवाह, तुमने निज सौभाग्य बढ़ाया।
नृपति महीरथ से कर मैत्री, तुमने निज को अभय बनाया"॥

हर्षित हो सम्वाद सुनो, "देता राजन् आशिरवाद।
नृपति इन्द्र से करो संधि, सुलझ जाएँगे सभी विवाद॥

स्वीकृत करते सुरपति तुम्हें, प्रताप नगर-शासक महान।
पाओगे सम्मान बराबर, स्वर्गलोक का हो यदि त्राण॥

क्षमा माँगते हैं माधवि से, सुरपति अपनी बहिन बनाने।
रक्षाबंधन पर आएँगे, अपना स्नेह भाव दर्शाने॥

नागसुता का मान बढ़ाने, देने उसको आशिरवाद।
देवेश्वर आ रहे स्वर्ग से, यह देने आया सम्वाद"॥

अग्रसेन ने अति प्रसन्न हो, नारद ऋषि का मान किया।
स्वागत में श्री इन्द्रदेव के, अपने पुर को सजा दिया॥

सुरपति सुरगण सहित, अग्रसेन से मिलने आए।
वे स्वर्गोपम दिव्य भेंट अग्रसेन के हित लाए॥

आलोकित थी सभा अग्र की, होता था मनहर वन्दन।
अग्रसेन ने आगे बढ़कर, किया इन्द्र का अभिनन्दन॥

प्रताप नगर सब देख रहा था, इन्द्रदेव की अगवानी।
द्रव्य अनेक विविध व्यंजन थे, भेट कर रहीं थी रानी॥

सुरपति ने माधवि को देखा, अपनी सुधि वे भूल गये।
रूप राशि की छटा निरख कर, अपने मन कृतार्थ हुए॥

नागलोक की यह देवोपम महिला, शोभित वसुधा पर।
नन्दन वन मेरा सूना है, क्यों न बसूँ मैं धरती पर॥

मुस्काते थे इन्द्र कह उठे, "मेरी बहिन क्षमा करना।
जो चंचलता हुई उसे तुम, मन से अब विस्मृत करना"॥

हाथ बढ़ाया था मघवा ने, माधवि ने राखी बाँधी।
"अपना धर्म निभाना भैया, सूर्य-चन्द्र जब तक साखी"॥

रंग-बिरंगी, विद्युत् छवि-सी, माधवि ने था तिलक किया।
रक्त कमल से देवेश्वर ने, अपना आशिरवाद दिया॥

"बढ़े नित्य अनुराग तुम्हारा, अपने पति के चरणों में।
सौभाग्यवती हो, पुत्रवती, निर्भय विचरो जग में"॥

नागसुता ने इन्द्रदेव को, सादर किया प्रणाम।
"सफल मनोरथ होय तुम्हारे, हो जीवन अभिराम"॥

सुरपति ने फिर अग्रसेन का, किया सुखद अभिनन्दन।
अमित दिव्य भेंट अर्पण कर, मुदित हुआ बंदन॥

कल्प वृक्ष सा पादप गुणमय, कामधेनु-सी गाय।
स्वर्गलोक से भूतल आए, पुर सारा हरषाय॥

अग्रसेन ने इन्द्रदेव का, किया स्तवन मंगलकारी।
"तुम देवों के ईश प्रतापी, सर्व जगत के विपदाहारी॥

मेघों को बरसाते भू पर, जगत मानता है उपकार।
बना रहे अनुराग आपका, जन-जन का होवे उद्धार"॥

विदा किया श्री इन्द्रदेव को, शूरसेन ने किया प्रणाम।
पुष्पाञ्जलि अर्पित करके, पूर्ण किए सब काम॥

आज शची महा मुदित थी, सफल हुआ संकल्प।
नारी-मिलन मूर्ति सुखकर है, रहता दुख न अल्प॥

शक्ति प्रबल है नारी जग की, रूप-राशि गुणधाम।
कभी लड़ाती, कभी मिलाती, करती जग का काम॥

देवि शची ने इन्द्रदेव को, सच्ची राह बताई।
मिटा स्वर्ग का संकट सारा, सुख, समृद्धि, शांति छाई॥

गर्ग ऋषि कहते हैं विभु से, वसुंधरा हो सुखमय।
यदि विश्व की प्रबल शक्तियाँ, करें प्रेम अरु बने अभय॥

*

अष्टम सर्ग : शूरसेन

शूरसेन का तिलक

पूर्ण सुखी थे बल्लभ नृप, करते शुभ हरि गान।
मातु वल्लभी सदा सुहर्षित, पाती गौरव मान॥

हुई लालसा मन में भारी, शूरसेन का करे विवाह।
होवें उऋण स्वयं कर्म से, ईश्वर पूर्ण करे मन चाह॥

अग्रसेन को बल्लभ नृप ने, अपना यह मंतव्य बताया।
मन प्रसन्न हो गये सभी के, सबको यह आयोजन भाया॥

अग्रसेन ने योग्य वधू हित, चहुँदिशि दूत पठाए।
खोजो सुन्दर सुकुमारी को, शूरसेन मन भाए॥

आयोजन था किया अग्र ने, सुखमय एक महोत्सव।
वर्ष-ग्रंथि थी शूरसेन की, मना रहे सब उत्सव॥

अलका पुरि के शुभ स्थल में, यक्षराज थे गौरववान।
मणियों की हैं खान जहाँ पर, प्रकृति स्थली सुखद महान्॥

मंदाकिनी सरिता के तट पर, यक्षेश्वर का सुखद महल।
करती सुवास थी सुता सुपात्रा, थी जो सरस, सरल॥

शूरसेन की गौरवगाथा, यक्षराज तक पहुँची थी।
रचा महोत्सव अग्रसेन ने, वार्ता सुखद सुनी थी॥

लेकर तिलक पुरोहित आया, प्रताप नगर में मंगलकारी।
चकित हो गया लख वैभव को, देख महोत्सव की तैयारी॥

किया निवेदन अग्रसेन से, "वैश्य वर्ण के नृपति महान्।
स्वस्ति वचन मम ग्रहण करो, पाओ अनुपम गौरव-मान॥

यक्षराज ने टीका भेजा, शूरसेन के वरण हेतु।
सुपात्रा सौन्दर्यमयी तनया का, स्वीकार करो हे धर्मसेतु"॥

कहा अग्र ने, "द्विजवर पावन, कृतार्थ हुए हम टीका पाकर।
यक्षराज आएँ इस थल पर, सुपात्रा सुकुमारी लेकर॥

इच्छा यही शूर की है, रचो स्वयंवर यहाँ महान।
जो उसके मन को भाएगी, वरण करेगा देगा मान"॥

कहा द्विज ने, "हे नृपवर, यक्षराज को दूँ संदेश।
करो प्रतीक्षा तब तक राजन, इच्छा पूरण करें महेश"॥

अग्रसेन ने भेज निमन्त्रण, यक्षराज से की मनुहार।
सार्थक करो महोत्सव पावन, हो सुपात्रा का सत्कार॥

स्वीकार निमंत्रण हुआ अग्र का, हुए मनोरथ मन भाए।
अपनी नवल सुता लेकर, यक्षराज सत्वर आए॥

देश-देश की सुकुमारी थीं, रति-रम्भा सी शोभाखान।
देव, नाग, नर, किन्नर वाला, आई थीं बन कर छविमान॥

यक्षराज की सुता सुपात्रा, आकर्षण आगार बनी।
संगीत, कला, अभिनय, नृत्य में, थी सुविज्ञ सौन्दर्य धनी॥

शूरसेन ने लखी कुमारियाँ, अति विस्मित उनके आनन।
किसको कैसे चुने, उलझ गया, हुआ भ्रमित था उसका मन॥

आयोजक ने कहा, "कुमारियो, करते हम अभिनंदन।
आगे बढ़ो, लखो शूर को, दो अपना शुभ दर्शन॥

होकर प्रसन्न कुमार आपको, पुरस्कार प्रदान करेंगे।
जीत सकेगी जो मन उनका, उसका ही वे वरण करेंगे"॥

बढ़ने लगीं सुघर सुन्दरियाँ, आकर्षण बरसातीं।
अपनी छवि-सुधा बहा कर, सम्मोहित वे करतीं॥

शूरसेन थे अति प्रसन्न, पुरस्कार देते जाते।
सौन्दर्य, कला, यौवन से वे परिचित होते जाते॥

लखा सभी ने हर्षित हो, यक्ष सुता आगे आई।
नम्र निवेदन करती थी वह, और जरा थी मुसकाई॥

"पर्वत प्रदेश की मैं सुकुमारी, निशि दिन तुम्हें रिझाऊँ।
अपनी ललित कला, सेवा से, निश्चय मन प्रवेश मैं पाऊँ"॥

विस्मित थे शूरसेन मन में, "यह तो देवांगना समान।
वरण करूँ यदि इसका मैं तो, हो मेरा अपूर्व उत्थान"॥

पुरस्कार पा धन्य हुई सुपात्रा, माला शूरसेन पहनाई।
हुआ स्वयंवर पूर्ण और शुभ बजने लगी बधाई॥

अति प्रसन्न थे यक्षराज, शूरसेन जामाता माना।
तिलक किया अति हर्षित होकर, भेंट करी सम्पति नाना॥

नृप वल्लभ थे अति प्रसन्न, अग्रसेन भी मुदित हुए।
यक्षराज-सा पा सम्बन्धी, अपने मन में धन्य हुए॥

महलों में थी बजी बधाई, मातु बल्लभी मुसकाई।
माधवी-नागसुता दोनों ही, मन में अति हरषाई॥

हुई आरती शूरसेन की, करतीं भाभी युगल विनोद।
करो विवाह की तैयारी, बरस रहा था अविरल मोद॥

सुपात्रा यक्ष कुमारी का, हुआ सुखद अभिनन्दन।
गोद भरी माधवी—नागसुता ने, खिला कमल-सा आनन॥

पाया आशिरवाद सभी से, सुपात्रा सुकन्या धन्य हुई।
शूरसेन-सा वर पाकर के, मनोकामना पूर्ण हुई॥

कहा अग्र से श्री बल्लभ ने, "यक्षराज को विदा करो।
करो विवाह की अब तैयारी, अलकापुर प्रस्थान करो"॥

बारात प्रस्थान

शुभ विवाह की बेला आई, हुआ पूज्य गणपति वंदन।
स्मरण करके सरस्वती का, भेजे गये निमन्त्रण॥

राज्य-राज्य से अतिथि वृन्द, प्रताप नगर में आए।
कण-कण दमक उठा धरती का, घर-घर बजे बधाए॥

कुलगुरु श्री आचार्य गर्ग ने, आयोजन प्रारम्भ किया।
आवाहन कर देववृन्द का, अपना आशीर्वाद दिया॥

नृप बल्लभ थे पूर्ण मुदित, मातु बल्लभी पुलक रही।
माधवी-नागसुता युगल, उन्मुक्त हृदय से विहंसि रही॥

शुभ बारात के साज सजाए, चतुरंगिणी सेना हुई तैयार।
बजने लगे वाद्य विविध, थी कौतुकियों की भरमार॥

राजमहल था सजा अग्र का, जगमग-जगमग करता।
रंग-बिरंगे ध्वज समूह से, अद्‌भुत शोभा भरता॥

शूरसेन थे सजे इन्द्र सम, चपल अश्व पर हुए सवार।
पीताम्बर पर अंगवस्त्र था, दिखते ऋतुपति के अवतार॥

आभूषण से सजे हुए, रत्न जड़ित लेकर तलवार।
कमल सदृश आनन शोभित, भाभी जाती थीं बलिहार॥

पहिना मुकुट अनोखा मुख पर, पड़ा हुआ सुन्दर सेहरा।
हुई आरती दूल्हे की, पुलक उठी थी वसुंधरा॥

स्वस्ति वचन बोले द्विजवर ने, मंगल शकुन हुए।
चली बारात अलकापुर को, हर्षमग्न थे सभी हुए॥

सबसे आगे हस्ति चले थे, जिन पर शोभित ध्वजा महान।
बजता जाता बड़ा नगाड़ा, शहनाई की मादक तान॥

उनके पीछे अश्व, ऊँट थे, बजे घंटिका मधुर स्वर में।
पैदल उनके पीछे चलते, धनुष-वाण, तलवारें संग में॥

महारथी जितने शासन के, चलते थे निज भव्य रथों में।
देवोपम सब शोभित होते, वे लाए थे स्वर्ग धरा में॥

ऋषि, मुनि, संत समाज चल रहा, सुखमय नाना वाहन में।
राजभवन का नारिवृन्द था, भव्य ललित शिविकाओं में॥

नृप वल्लभ थे शोभित रथ पर, गर्ग ऋषि को संग लिए।
दिखते जैसे इन्द्रदेव हैं, गुरु बृहस्पति संग लिए॥

चली बरात अजब मतवाली, जैसे सरिता बही प्रबल।
बीते निशि वासर अनेक थे, जाते जहाँ मचे हलचल॥

नगर-नगर में स्वागत होता, मिलता था सुन्दर जनवास।
सेतु बँधाए नद-नदियों के, यक्षराज ने दिया सुवास॥

हंसी-खुशी से वर यात्रा, अलकापुर में पूर्ण हुई।
वधूपक्ष से स्वागत पाकर, सब बरात कृत-कृत्य हुई॥

किया प्रवेश वर ने पुर में, बरसे सुरभित पुष्प अमित।
खड़ी झरोखों पर सुन्दरियाँ, गाती सस्वर गान ललित॥

बादल में था चन्द्र छिपा, देख रहा था अजब तमाशा।
सेहरे से मुख छिपा शूर का, दर्शन की बढ़ रही पिपासा॥

नगर निवासी प्रमुदित होकर, न्योछावर करते थे धन।
हुई विमोहित थीं कुमारियाँ, आकर्षित थे इनके मन॥

पहुँची बरात जब वधूद्वार पर, मनमोहक संगीत बजा।
मंडप भव्य बना विशाल, सुरभित पुष्पों से सुखद सजा॥

अगवानी करते यक्षराज थे, आगे बढ़े संग ले सहचर।
मंगलाचरण किया द्विजवर ने, स्वस्ति वचन बोले सुखकर॥

श्री बल्लभ अरु अग्रसेन का, हुआ सुखद अभिनन्दन।
आलिंगन कर मिले सम्बन्धी, करते थे विनम्र वंदन॥

शूरसेन पहुँचे तोरण तक और खंग से किया प्रहार।
वातायन से सुन्दरियों ने बरसाए थे पुष्प अपार॥

उतरे शूरसेन सैन्धव से, आगे बढ़े चढ़े चौकी पर।
मंगल आरती सास उतारे, करे निछावर दूल्हे पर॥

भली-भाँति वर का अभिनन्दन, नारि पक्ष ने मुदित किया।
अर्पित करके अर्घ सुगंधित, उसका पूजन सुभग किया॥

सभी साथियों के संग शूर, पहुँचे ललित रंगशाला।
मंच बना था आकर्षक, आयोजित दीपों की माला।।

युगल सिंहासन रत्न जड़ित थे, मणि, मुक्ता उज्ज्वल से।
छत्र तने थे जिनके ऊपर, शुभ्र सुशोभित मोहक से।।

धीरे-धीरे कदम बढ़ाए, श्री शूर सिंहासन बैठ गये।
सुन्दरता वर की अनुपम थी, दर्शक गण सब चकित हुए।।

श्री यक्षराज का शुभ वितान था, नर-नारी से भरा हुआ।
निरख रहा अनुपम सुदृश्य था, प्रेम राग से सना हुआ।।

रूप राशि की सुललित प्रतिमा, बढ़ी आ रही उत्सव थल में।
सुपात्रा सुन्दरी शोभित थी, वसुधा के प्रभापूर्ण प्रांगण में।।

शोभा अवर्णनीय बाला की, करती थी सब धरा विमोहित।
सब सखियों के साथ मंच पर, होती थी रति-सी शोभित।।

वर की अवर्णनीय शोभा लख, यक्षकुमारी हुई निहाल।
अति प्रसन्न हो हर्ष मग्न, पहिनाई वर को जयमाल।।

शूरसेन ने निज आसन से, उठ सहर्ष सत्कार किया।
सुपात्रा वधू की ग्रीवा को, वरमाला से लसित किया।।

शूरसेन के वाम भाग में, नवल वधू सुशोभित थी।
वसुंधरा थी पुलक उठी, शुभ्र ज्योत्सना विलसित थी।।

उभय पक्ष ने नवदम्पति का, किया सुखद अभिनन्दन।
प्रस्तुत करते भेंट अनुपम, धन्य किया निज जीवन।।

न्योछावर कर रत्न अनोखे, सबने ली बलिहारी।
बालाओं ने मंगल गाए, हुईं विमोहित सखियाँ सारी।।

पाया आशिरवाद सभी का, शूरसेन मन पुलक रहे।
सुपात्रा सुकुमारी परम हर्षमय, नयन कमल अवलोक रहे।।

माधवि-नागसुता ने आगे बढ़, किया सुखद अभिनन्दन।
सुपात्रा सुन्दरी का प्रेम भरा, किया मुदित आलिंगन।।

रंगमंच की अद्भुत शोभा, स्वर्ग उतर यों आया।
दृश्य अनुपम मनमोहक था, सुन्दर, सुखद सुहाया।।

गर्ग ऋषि ने विभु नृप को, सुन्दर वृत्त सुनाया।
श्री शूरसेन के 'शुभ विवाह' का, मंगलमय मुहूर्त आया।।

पाणिग्रहण संस्कार

अलकापुरि के दक्ष महल का, आलोकित था कण-कण।
नर-नारी से शोभित स्थल, बजते थे किंकिणि कंकण।।

कोलाहल था सुन्दर लगता, मचा हुआ था कलरव।
नहीं सुनाई देता था स्वर, बरस रहा यश-गौरव।।

मंगल मुहूर्त ब्याह का आया, यज्ञ वेदिका सुघर बनी।
मंडप विवाह का शोभित होता, त्रिविध पवन थी सरस सनी।।

दोनों कुलगुरु बैठे सत्वर, स्वस्ति वचन उच्चारण करते।
करते थे आह्वान ब्रह्म का, पावन मंत्रों को पढ़ते।।

हुई वंदना श्री गणेश की, जगदम्बा को ध्याया।
स्मरण किया था त्रिदेव का, अर्पण अर्घ्य सुहाया।।

बैठे शूर वरासन पर, शुभ सुरपति से लगते।
अग्रसेन, वल्लभ नृप हर्षित, सबको आदर देते।।

हुआ 'गर्ग' संकेत शूर ने, देवों का आह्वान किया।
भक्ति भावना से प्रसन्न हो, सबको था मधु पर्क दिया।।

आलोकित था अनल प्रभामय, शुभ पावक का हुआ प्रकाश।
आहुति पाकर अग्निदेव थे, करते जन-मन वास।।

यक्षराक्ष निज सुता सुपात्रा, सादर सहर्ष मंडप लाए।
धर्मपत्नि के साथ बैठ कर, वैवाहिक सब कर्म कराए।।

किया संकल्प शुभ विवाह का, कन्यादान सहर्ष किया।
दान-दक्षिणा करके प्रदान, पावन पुण्य अपूर्व लिया।।

दोनों कुलगु ने मिल करके, शाखोच्चार सहर्ष किया।
अभिनन्दन कर नवदम्पति का, इनको शुभ आशीष दिया॥

शिलारोहणम् विधि सुन्दर, शास्त्रानुकूल हुई सम्पन्न।
अग्नि परिक्रमा करके सुखमय, नव दम्पति थे हुए प्रसन्न॥

शूरसेन ने नवल वधू को, दे आशीष सौभाग्य बढ़ाया।
सप्त वचन हम पूर्ण करेंगे, यह व्रत इनने अपनाया॥

× × ×

वर—[1]"अग्नि परिक्रमा हुई पूर्ण है, पत्नि भाव तुम में आया।
ग्रहण करो वामांग सुनयने, क्यों दक्षिणांग भाया॥

हो विवाहिता पत्नी मेरी, किया पिता ने कन्यादान।
मन में यदि संकोच तनिक हो, प्रगट करो मतिमान"॥

वधू—"कन्यादान, होम, लाजा से नहीं विवाह होता पूरा।
सप्तपदी सम्पन्न न हो तो है विवाह अधूरा॥

सप्त वचन मेरे हृदयेश्वर, हो प्रसन्न स्वीकार करो।
वामांगे मैं तभी बनूँगी, जब तुम इन्हें प्रदान करो"॥

प्रथम वचन—

"पहला कदम बढ़ाएँ हम, अन्न द्रव्य में वृद्धि करें।
लाओ जो धन-धान्य सदन में, आप समर्पित मुझे करें॥

स्वीकार करो गृह स्वामिन, सब कुछ हो मेरे आधीन।
वामांगे मैं तभी बनूँगी, सब कुछ मेरे में हो लीन"॥

द्वितीय वचन—

"दूजा कदम बढ़ाएँ प्रियवर, जो बल हमें प्रदान करे।
काम करूँगी निशिदिन घर का, प्रेयसि सेवा कार्य करे॥

---

१. विवाह-पद्धति से उद्धृत सप्त वचनों का स्वरचित पद्यानुवाद।

मधुरभाषिणी सदा रहूँगी, आज्ञाकारी जानो।
सभी बंधु-बांधवों, ज्येष्ठ जनों की, मुझे सेविका मानो॥

जीवन भार ग्रहण हो मेरा, बनो प्राणपति कर्णाधार।
वामांगे मैं तभी बनूँगी, स्वीकार करो मम रक्षा भार"॥

तृतीय वचन—

"तृतीय कदम बढ़ाएँ प्यारे, जो धन बुद्धि प्रदान करे।
हो सहृदय तुम मम जीवन में, ईश्वर सौख्य प्रदान करे॥

पालन किया जनक, जननी ने, कष्ट सहे भारी।
अर्पित किया नाथ तुम्हें, अग्नि साक्ष्य मैं शरण तुम्हारी॥

गुरु, पुरोहित, विज्ञजन समक्ष, मैं पत्नी, तुम स्वामी।
बदल गये मम जाति, गोत्र, कुल, बनी तुम्हारी अनुगामी॥

सुख से रहें आत्मजन मेरे, प्रभु से विनती करती हूँ।
हूँ अबला मैं, वचन निभाओ, तुम स्वामी मैं स्वामिन हूँ॥

पालन पूर्ण करो जीवन-भर, आशाएँ हों मम पूरी।
वामांगे मैं बनूँ तुम्हारी, सफल कामना हो मेरी"॥

चतुर्थ वचन—

"चौथा कदम बढ़ाएँ प्यारे, सुखमय बुद्धि प्रदान करे।
शांति सदा मम गृह में छाए, प्रभु, जीवन में कल्याण करे॥

सुख-दुख सहर्ष सहूँगी स्वामी, सदा रहूँगी अनुगामी।
क्रोध करो यदि किसी समय, बनूँ मधुरभाषिणी, सहगामी॥

गौरी पूजा सदा करूँगी, कल्याण हेतु जीवन में।
वामांगे मैं तभी बनूँगी, मम पोषण हो स्वामि सदन में"॥

पंचम वचन—

"कदम पाँचवाँ आगे हो, जो पशु सुःख प्रदान करे।
हो समृद्ध परिवार हमारा, उद्देश्यों को सफल करे॥

पालन हो मेरे कुटुम्ब का, यौवन और जरा में।
पाऊँ सब इच्छित पदार्थ, हो सके प्राप्त वसुधा में।।

बार-बार मैं माँगू तब भी, कभी क्रोध मत करना।
पाऊँ वचन आपसे मैं, स्वीकार मुझे वामांगे बनना"।।

षष्ठ वचन—

"कदम छठा अग्रसर हो, पाएँ हम षट् ऋतु आनंद।
सफल हमारा गृहस्थ धर्म हो, सुरभित हो जीवन मकरंद।।

बांधव मेरे सभी इष्ट जन, चिर सेवक नाथ तुम्हारे।
कन्यादान किया मेरा अर्घ दे, कंकण बद्ध हुए सारे।।

प्रेमपूर्वक हुआ विवाह है, कभी न कहना वचन कठोर।
नहीं दिया धनधान्य व्याह में, सुन यह पाए पीड़ा घोर।।

एक साथ रहने से प्रायः कभी कलह हो जाती है।
सदा माँगती, अनुनय करती, चरण कमल की दासी है।।

यदि पूरा हो वचन क्षमा का, अभय दान मैं पाऊँ।
स्वीकार करो यह विनय नाथ, मैं वामांगे बन जाऊँ"।।

सप्तम वचन—

"कदम सातवाँ बढ़े हमारा, सप्त लोक में यश हो।
सफल पतिव्रत मेरा प्रण हो, जीवन में मंगल हो।।

हवन, यज्ञ, विवाह, दान में, तीरथ, व्रत में साथ रहूँ।
वामांगे मैं बनूँ हृदयेश्वर, सादर यदि स्थान गहूँ।।

अर्ध पुण्य मैं प्राप्त करूँगी, किन्तु न पाप लहूँ।
प्राप्त करोगे अर्ध पाप, यदि मैं असत् कर्म गहूँ।।

स्वीकार करो यह वचन सातवाँ, करो प्रतिज्ञा पालन।
वामांगे मैं बनूँ तुम्हारी, करो पूर्ण मम सप्त वचन"।।

वर वचन—

"धारण करो मम धर्म, आचरण, सुख दो कुटुम्ब को मेरे।
मधुरभाषिणी रहो सदा ही, आलस्य, क्रोध, दूर हों तेरे।।

बनो आज्ञाकारिणी मेरी, जननि, जनक को सुख दो।
प्रेम करो भगिनी बंधु जनों से, सर्व जनों को आदर दो।।

करो अलंकृत गुण भूषण से, अपने सुन्दर तन को।
करूँ सुन्दरी पोषण तेरा, कर स्थिर मम गृह में चित को।।

करो गमन न उद्यानों में, परगृह में, मदिरालय में।
करो न रति पर-पुरुषों से, विरति हो हास्य और गायन में।।

पालन करूँ प्रिये आजीवन, ग्रहण करूँ तब जीवन भार।
मेरे घर के सुख-दुख में यदि, साथी बनना हो स्वीकार"।।

× × ×

मुदित हुए थे नव दम्पति, वचनों का कर शुभ विनिमय।
वामांगे थी बनी सुपात्रा, और शूर उसके चिन्मय।।

माँग भरी सिन्दूर से वर ने, पत्नी को सौभाग्य दिया।
अरुण राग से भूषित सिर था, मेघों को द्युतिमान किया।।

हर्षित हो सारा समाज, उन्मुक्त अशीषें देता था।
हो चिरायु, सम्पन्न, सुखी, सफल कामना करता था।।

वेदी पर से उठ दम्पति ने, अन्तःपुर में किया प्रयाण।
कुलदेवी की पूजा करने, देने वर ने बुद्धि प्रमाण।।

हुई तैयारी सुखद भोज की, रसमय थी ज्योनार हुई।
विविध भाँति के व्यञ्जन, मधुमय, षट्रस की थी सृष्टि हुई।।

फल, मेवा, श्री खंड, खीर का, भोजन कर सब तृप्त हुए।
शुचि, शीतल जल सेवन कर, अपने मन सब मुदित हुए।।

सेवन कर ताम्बूल सुगन्धित, मुख सुवास से युक्त हुए।
पुष्पहार से हुए अलंकृत, आतिथ्य ग्रहण कर तुष्ट हुए॥

अर्ध रात्रि भोजन में बीती, फिर सबने विश्राम किया।
स्वच्छ, सुकोमल शैय्याओं पर, सबने बेसुध शयन किया॥

हुआ प्रभात, द्विजगण चहके, भ्रमरों का सुन्दर गुंजन।
देवालय में शंखनाद से, प्रारम्भ हुआ सुर वंदन॥

हुई विदा की शुभ तैयारी, दान-दहेज सन्मुख आया।
नृप वल्लभ अरु अग्रसेन ने, ग्रहण किया जो मनभाया॥

दिया दान था द्रव्य प्रचुर, देवालय, याचक, विप्रवृन्द को।
विद्वानों को भेंट समर्पित, उपहार दिए बंधु-बांधव को॥

अलकापुरि में करुणा रस की, आत्मद्रवित अश्रु धार बही।
यक्षराज थे विह्वल होते, नवल वधू थी बिलख रही॥

दृश्य मार्मिक हृदयस्पर्शी, सुख के आँसू बहते।
सुपात्रा तनया विदा हो रही, विह्वल वचन सभी कहते॥

"मंगलमय सौभाग्य बढ़े, पूर्ण सौख्य तुम पाओ।
अपने पति की सेवा कर, जीवन सफल बनाओ"॥

यक्ष पत्नि के अश्रु गिर रहे, भीग रहा था उसका तन-मन।
आज सुपात्रा छोड़ सभी को, चली जा रही स्वयं सदन॥

युगल सम्बन्धी मिले परस्पर, आलिंगन था प्रेम भरा।
करना क्षमा सभी भूलों को, तुम उदार हो हृदय हरा॥

आभारी थे श्री वल्लभ, अग्रसेन ने किया प्रणाम।
शूरसेन ने नमन किया, बन जीवन में पूर्ण सकाम॥

चली बारात आनन्दमग्न हो, करती थी गुणगान।
अति आतिथ्य मिला समधी से, करते सभी बखान॥

सुखमय विदा प्राप्त करके, सब चल दिए सदन की ओर।
पहुँचे थे प्रताप नगर, निज मन में थे सभी विभोर॥

प्रताप नगर के पुरवासी, स्वागत के सब साज लिए।
अभिनन्दन करते शूरसेन का, सबने सादर नमन किए॥

प्रमुदित बरात का प्रवेश हुआ, महलों होता मंगलाचार।
सुपात्रा-सी सुघर वधू लख, सब रनवास हुआ बलिहार॥

आरती उतारी मधुर भाव से, सबने सुरभित अर्घ दिया।
नवल वधू ने अभिनन्दन पा, सबका आशिरवाद लिया॥

"कुल की बेलि बढ़े भविष्य में, जीवन में सुख पाओ।
सौभाग्य रात्रि होए रसवंती, प्रेम सरित में नहाओ"॥

हुआ प्रवेश महलों भीतर, मातु वल्लभी हरषाई।
आलिंगन कर सुघर वधू का, कुलदेवी मुसकाई॥

सास-ससुर से आशिष पाकर, सुपात्रा थी मुदित हुई।
चरण कमल छू करके इनके, अन्तःपुर सानन्द गई॥

शूरसेन ने पितृ चरण में, अपना शीश नवाया।
और मातु को माथ नवा कर, मन चाहा फल पाया॥

संध्या हुई, निशा आई, आलोकित हो गया गगन।
ताराओं संग शशि शोभित था, करता था मुदमय नर्तन॥

प्रताप नगर का थल सुन्दर, जगमग जगमग होता था।
प्रीतिभोज था हुआ महल में, अति आकर्षक उत्सव था॥

शूरसेन सुपात्रा संग, शोभित थे सिंहासन पर।
लख कर इनकी मोहक छवि, मुदित हो रहे नारी-नर॥

हुआ महोत्सव पूर्ण सुखद, राजमहल में सुखद बहार।
युग-युग जिए नवल दम्पति, रसमय हो इनका संसार॥

गर्ग ऋषि ने नृपति विभु को, सुललित सुखमय मनभाई।
शरसेन के शुभ विवाह की, सुन्दर कथा सुनाई॥

*

नवम सर्ग : दर्शन

अग्रसेन-दर्शन

प्रताप नगर का सुन्दर शासन, अग्रसेन करते मतिमान।
राज्य व्यवस्था पूर्ण सुदृढ़, होता था चहुँदिशि यशगान॥

शूरसेन ने निज कौशल से, सैन्य शक्ति को सुदृढ़ किया।
राज्य विस्तार करने का अग्र से, था अपना प्रस्ताव किया॥

कहा अग्र ने, "तात सत्य है, अग्र राज्य का हो विस्तार।
किन्तु रूप उसका विभिन्न हो, पूर्ण अहिंसामय आचार॥

शत्रु नहीं है कोई जग में, शत्रु सदा मन में बसता।
अन्य शक्ति को मान शत्रु, नर एक विषम भ्रम में फँसता॥

सेना का उद्देश्य सदा हो, निज सीमा की रक्षा करना।
आवश्यक हो तो राष्ट्र हेतु, निज प्राणों को भी देना॥

अपना तुम कर्त्तव्य करो, सुदृढ़ राष्ट्र की रक्षा हो।
आपात काल में यदि बाहर से कोई शत्रु आक्रमण हो॥

मार भगाओ निज पौरुष से, सीमाओं को पार करो।
करो आक्रमण कदम बढ़ाओ, और शत्रु को त्रस्त करो॥

लड़ कर उसे पराजित कर दो, अपने वश में तुरत करो।
संधि करे यदि शत्रु कोई, तो उसका राज्य न नष्ट करो॥

यदि दुर्दान्त वह शत्रु नहीं, कभी संधि की बात करे।
अन्य राज्य से मिल करके, फिर सीमाओं पर घात करे॥

पूर्ण पराजित कर दो उसको, अपना राज्य बढ़ाओ।
और उसे अपनी करनी का पूरा मज़ा चखाओ॥

नीति यही है अग्र राज्य की, जिओ और जीने दो।
शत्रु कभी न दुर्बल समझो, उसे न कभी बढ़ने दो॥

अपने मन में शत्रु अनेक हैं, पहले इनका दमन करो।
काम, क्रोध, अरु लोभ, मोह, मद, इनका शमन करो॥

ये विकार हैं मानव मन के, नीचे सदा गिराते।
धर्म-प्राण, नैतिक शासन से, ये सब कुचले जाते॥

पंच विकारों से मानव, यदि स्वतन्त्र हो जाए।
धर्मानुकूल अपनी प्रवृति से, शांति व्रती बन जाए॥

तो न पाप करे जीवन में, और न होए भ्रष्टाचार।
दुर्बल का न शोषण होए, और न अत्याचार॥

क्रोध भाव है शत्रु विकट, जो अन्धा करता मन को।
करके दुष्टाचार प्रबल यह, नष्ट करे संस्कृति को॥

लोभ शत्रु है समाज का, करता है यह आत्म-हनन।
और कराता असत्य आचरण, तस्करता अरु शोषण॥

मोह शत्रु है निपट नीच, हमसे पाप कराता।
त्याग, तपस्या, कर्त्तव्यों से नीचे सदा गिराता॥

त्याग मोह को यदि मानव, उत्साहपूर्वक कर्म करे।
मंगल प्राप्त करे जीवन में, जन-जन की वह व्यथा हरे॥

अहंकार है मदिरा सम, हरता जो मानव विवेक।
प्राणी का करता विनाश है, प्रस्तुत कर बाधा अनेक॥

अन्तःशत्रु को तुम पहिचानो, पहले उसका दमन करो।
बाह्य शत्रु होंगे परास्त, यदि तुम ऐसा यत्न करो॥

चाहे राष्ट्र, समाज, व्यक्ति हो, अथवा हो परिवार।
आर्थिक समृद्धि का अर्थ रहा है, मितव्ययी आचार॥

करो न शोषण, उत्पादन हो, निज श्रम कौशल का।
सदा बचाओ, करो संग्रहण, निराकरण हो संकट का॥

व्यक्ति और राष्ट्र दोनों में, हो समता का व्यवहार।
सदा न्याय, सुख, शांति प्रदाता, प्रशंसनीय आचार॥

बूँद-बूँद से सागर भरता, सागर शक्ति-प्रदायक।
व्यक्ति बनाता सदा राष्ट्र को, राष्ट्र व्यक्ति का सर्जक॥

व्यक्ति त्याग करके समाज को, यदि है सबल बनाता।
तो समाज बलशाली बन कर, व्यक्ति को अपनाता॥

राष्ट्र संग्रहित करे द्रव्य को, मानव हित हो पर उद्देश्य।
व्यक्ति करे उत्पादन धन का, चाहे राष्ट्र हित पाए क्लेश॥

कष्ट-सहन, त्याग, साधना, मानव महान बनाते।
इनसे ही समाज उठता है, राष्ट्र स्वर्ग बन जाते॥

करो न घृणा किसी व्यक्ति से, न उसको छोटा मानो।
सभी अंश हैं एक ब्रह्म के, भेद-भाव मत जानो॥

समता और सहयोग मान्य हो, बनो सदा सहकारी।
सकल धरा परिवार हमारा, रहो सर्व दुखहारी॥

गर्व करो तो निज संस्कृति का, पालन करो सुधर्म।
बनो विनम्र सदा जीवन में, यह ही मानव धर्म॥

धरती को ही स्वर्ग बनाओ, वसुंधरा महिमामय।
दर्शन करो सदा ब्रह्म के, ईश्वर सर्व जगतमय॥

'विश्वमैत्री' सिद्धान्त हमारा, मानव एक समान।
प्रेम हमारी बने साधना, रक्षक हो भगवान॥

लेकर के मंतव्य यही, मैं भारत भ्रमण करूँगा।
निज स्वदेश की उन्नति हित, फिर एक बार विचरूँगा॥

माधवि को मैं संग रखूँगा, जो देगी जीवन में साथ।
नागसुता यह ध्यान रखेगी, बने न प्रजा अनाथ॥

बंधु योग्य हो तुम शुभ शासक, मात-पिता की सेवा करना।
राज्य व्यवस्था की रक्षा में, निज जीवन अर्पित करना"॥

ले विदा पुनः निज मात-पिता से, अग्रसेन ने किया प्रयाण।
नाग-सुता की सुखद कामना, "करे ईश इनका कल्याण"॥

भारत दर्शन (दक्षिण)

प्रताप नगर से चले अग्र प्रभु, मंगल मय यात्रा पर।
चिर संगिनी माधवी साथ में, शोभित अति मनहर॥

कदम बढ़ाए दोनों जाते, यात्रा-रथ पर हुए सवार।
मेघ-दामिनी का शुभ-संगम, आलोकित करता संसार॥

स्वागत होता जाता पथ में, धन्य-धन्य हे शुभ यात्री।
मानव रक्षा का संदेश पा, जागृत हुई धरित्री॥

दक्षिण भारत प्राकृतिक छटा, स्नेह सुमन बरसाती।
अभिनंदन करती दम्पति का, श्रद्धा भाव दिखाती॥

'पुरी सुदामा' पहुँच अग्र ने, श्रद्धा सुमन किए अर्पित।
मैत्री का आदर्श जहाँ, करता था मन को हर्षित॥

सखा भाव का अद्भुत दर्शन, विप्र सुदामा की शुभ भक्ति।
श्रीकृष्ण की दीन बंधुता, फैलाती जग में अनुरक्ति॥

सागर जहाँ उछाले लेता, उठती थी अति मुदित तरंग।
अमृत बरसाता मंयक था, गूँज रहे उपवन में भृंग॥

नमन किया अग्रसेन ने, अति पावन पुण्य स्थल को।
श्रद्धा सुमन चढ़ाये अपने, प्रेम मूर्ति जगदीश्वर को॥

बढ़े अग्रसेन यात्रा पर, पहुँचे सुखमय पावन धाम।
पुरी 'द्वारिका' नमन किया, लिया सुखद हरि नाम॥

श्रीकृष्ण चन्द्र की विमल कीर्ति, भू मंडल पर छाई।
अमरावति सी पुरी द्वारिका, शोभित थी मनभाई॥

सागर का संगीत सुहाना, प्रेम भाव भरता था।
नभमंडल में शशि आलोकित, अंधकार हरता था॥

किया नमन युगल दम्पति ने, हुआ सफल पावन जीवन।
वसुंधरा के उद्धारक जय, जयति देवकी-नंदन॥

विश्व प्रेम की दिव्य मूर्ति, भारतीय संस्कृति के धाम।
राष्ट्र नीति भारत की सुखकर, संचालित जिनसे अविराम॥

कल्याण करें श्री यदुपति, हरे विश्व का दुःख महान।
गीता का संदेश सुना कर, किया जगत का शुभ कल्याण॥

आगे बढ़े रम्य सह-यात्री, पहुँचे नासिक धाम।
गोदावरि का विमल नीर है, देता जन जन को आराम॥

अति पावन गौरव स्थल थी, पंचवटी सुखदाई।
श्रीरामचन्द्र की शुभलीला, जहाँ हुई मनभाई॥

ऋषियों की रम्य स्थली, अगस्त्य ऋषि आश्रम।
ब्रह्मगिरि का उच्चशैल, जहाँ गोदावरि उद्गम॥

श्री त्रयम्बक का पुण्य तीर्थ, जो देता शुभ प्रभु भक्ति।
महाराष्ट्र की प्रकृति स्थली, जन जन को देती है शक्ति॥

कदम बढ़ाए अग्रसेन ने, पम्पापुर को किया प्रणाम।
पावन शबरी आश्रम देखा, भक्ति भाव का थल अभिराम॥

पवन पुत्र श्री हनुमान का, पावन सुखद जन्म स्थल।
महावीर की लीलाओं का, अति अद्भुत् शुभ थल॥

करके निज प्रस्थान वहाँ से, महेन्द्र शैल पर आए।
परशुराम का श्रेष्ठ तपोवन, केरल दृश्य सुहाए॥

नारिकेलि अरु कदली के जहाँ, अगणित वृक्ष लुभाए।
सागर तट पर जहाँ सदा ही, मछुए गीत सुनाए॥

यात्री हुए अग्रसर पहुँचे, कन्या कुमारी धाम।
भारत का सीमांत दक्षिणी, प्रकृति छटा अभिराम॥

मातृ अम्बिके जहाँ बिराजी, कौमार्य व्रत धारण करती।
घोर तपस्या करती निशिदिन, वन कन्या-सी जहाँ विचरती॥

तीन दिशा में सागर बहता, भारत-दक्षिण अन्त।
पुण्य भूमि है जो मानव की, जहाँ विचरते सन्त॥

चन्दन के जहाँ वृक्ष सुवासित, धरा स्वर्ण की खान।
कन्नड़ संस्कृति जहाँ पल्लवित, होता नित प्रभु गान॥

कर्नाटक की पावन भूमि, आर्य नृपति का राज्य।
दक्षिण भारत का वृन्दावन, जन-जन का सौभाग्य॥

अग्रसेन ने निज यात्रा के, सुन्दर कदम बढ़ाए।
श्री 'रामेश्वर' दर्शन कर, परम ब्रह्म गुण गाए॥

दर्शन कर सागर विशाल के, धनुष कोटि को किया नमन।
लखा सेतु श्री रामेश्वर का, पार लगाता जो जीवन॥

श्रीलंका का किया स्मरण, वैदेही का बन्दी धाम।
राघव की संग्राम भूमि जो, रावण का जहाँ गूँजा नाम॥

असुर राज्य की धरा विशद, अति आकर्षक 'सिंहल' द्वीप।
रक्ष-संस्कृति का स्थल, बसता भारत देश समीप॥

वल्लभ सुत ने द्रविण राज्य में, अपना सुखमय कदम रखा।
तमिल धरा के वैभव को, उत्सुक नयनों से निरखा॥

आर्य और अनार्य संस्कृति का, होता है जहाँ संगम।
द्रविण सभ्यता का सुमेरु, आकर्षक, हरता मन-भ्रम॥

शस्य श्यामला धरा जहाँ की, उपजाती है प्रचुर धान्य।
जहाँ विकसती ललित कला, परम्परा शुभ मान्य॥

'महाबलीपुरम्' जन्मभूमि जो, नृपति वली जग दानी।
प्रगट हुए जहाँ वामन प्रभु थे, महालक्ष्मि सुखदानी॥

अग्रसेन ने व्यतीत किया, यहाँ अपना कुछ जीवन।
किया प्रभावित था जन-जन को, मोह लिया था उनका मन॥

ईश्वर एक महान् विश्व का, उसका हो आराधन।
आर्य-अनार्य दोनों समाज पर, करता वह ही शासन॥

भारत देश परम विस्तृत है, संस्कृति इसकी अति प्यारी।
वर्धित होए सर्व जगत में, जन-जन की हितकारी॥

'विश्व प्रेम' हो सुखद मंत्र, पालन करो स्वधर्म।
अपनाओ निज सरल रीतियाँ, करो सदा शुभ कर्म॥

'विश्व-शान्ति' हमारा नारा, युद्ध-वृति का होए अन्त।
सब स्वतन्त्र हो स्वयं भूमि में, पाए सुःख अनन्त॥

पहुँचे अग्र काँचीपुर में, परम भव्य मन भाई।
शिव महिमा जहाँ प्रत्यक्ष है, विष्णु भवित सुखदाई॥

ईश्वर के हम सभी उपासक, रामेश्वर है एक समान।
द्रोह भाव को दूर भगाओ, बने हमारा राष्ट्र महान॥

हुई प्रभावित सुघर माधवी, महिला जग उसने देखा।
नारी नहीं संकुचित सत्ता, प्रत्येक क्षेत्र में उसने पेखा॥

कर्म कर रही नारी सब है, बाहर भीतर दोनों क्षेत्र।
कल्याणी वह बनी जगत में, आलोकित हैं उसके नेत्र॥

परम ब्रह्म की महाशक्ति है, सब शिशुओं की माता।
लक्ष्मी है मानव समाज की, दुष्टों की जो प्रबल निपाता॥

चले अग्रसेन प्रफुल्लित हो, तिरुपति के बाला जी।
आराधन जहाँ होता प्रभु का, आभा सुखद विराजी॥

जहाँ स्वर्ण प्रचुर चढ़ता है, मनोकामना होती पूर्ण।
भव्य देवालय जिसका सुंदर, कोष सदा रहता परिपूर्ण॥

देश-देश के दर्शक अगणित, आकर शीश चढ़ाते।
पूर्ण करे अपना व्रत पावन, सुख समृद्धि को पाते॥

प्रस्थान किया श्री अग्रसेन ने, सुखमय दक्षिण भारत से।
कदम बढ़ाए इनने अपने, हुए प्रफुल्लित तन-मन से॥

प्रकृति स्थली परम मनोहर, अमर कंटक छविमान्।
शैल सतपुड़ा परम सुहावन, नदी ताप्ती शोभावान्॥

नदी नर्वदा सुखद पार की, बहती सुखमय पश्चिम ओर।
देखे प्रपात उज्ज्वल जल-थल, वन्य जीव अरु जंगल घोर॥

संगमरमर की चट्टानें, श्वेत दुग्ध-सी सम्मोहक।
नदियों के जल बहते कल कल, उगे कमल जिनमें मोहक॥

ऊपर अम्बर आलोकित है, तारागण से भरा हुआ।
नीचे सरिता जल शोभित है, अति शीतल न जाय छुआ॥

मध्य देश की प्रकृति सुन्दरी, करती निज शृङ्गार।
रंग-बिरंगे पुष्पों से, गूँथ रही मनमोहक हार॥

शुभ पलास की ओढ़ चुनरिया, लगा रही जो मन में आग।
अग्रसेन थे अति विस्मित, प्रकट कर रहे निज अनुराग॥

यात्रा पूरी कर दक्षिण की, अग्रसेन निज घर आए।
स्वागत हुआ उत्साहपूर्ण, प्रताप नगर में बजे बधाए॥

श्री वल्लभ अरु सूरसेन ने, आलिंगन कर किया स्नेह।
महलों में थी बजी बधाई, जगमग होता शोभित गेह॥

यात्रा हुई सुखद पूरी, वर्णन रसमय सुना सभी ने।
नागसुता रोमांचित होती, अनुभव कर वियोग अपने॥

प्राणेश्वर कर प्राप्त विरहिणी, दुःख भूली मन कमल खिला।
हुई कामना सफल प्रिया की, जीवन का सर्वस्व मिला॥

अंतिम दर्शन (श्री वल्लभ स्वर्गवास)

बीत गए कई दिवस, अग्रसेन चिंतित मन में।
महाराज वल्लभ अस्वस्थ थे, रहते राजभवन में॥

निर्बलता अनुभव करते थे, चित्तवृत्ति कुछ खिन्न हुई।
प्रकृति उपासना शिथिल हुई, नयन ज्योति थी मंद हुई॥

सेवा करती वल्लभी पति की, नहीं नींद उसे आती।
मन था अशांत कुछ उसका भी, कोई वस्तु नहीं भाती॥

कभी अतीत का स्मरण करती, नृप वल्लभ का शौर्य महान।
यौवन का वैभव गरबीला, जीवन वीणा की मधु तान।।

थका शरीर था मातु वल्लभी, कभी सोचती अपने मन में।
"क्या प्राणेश्वर छोड़ मुझे, दुखी बनाएगें जीवन में।।

हे श्री शंकर जगदीश्वर प्रभु, यही विनय मैं करती हूँ।
स्वस्थ होएँ मेरे प्राणेश्वर, शत शत नमन तुम्हें करती हूँ।।

उनसे पहिले स्वर्गवास हो, मेरा ही हे परमेश्वर।
मरूँ सुहागिन मैं ही प्रभुवर; यही मांगती मैं हूँ वर"।।

व्रत करती थी मातु वल्लभी, निशि दिन सेवा करती।
वल्लभ नृप की शांति हेतु, सभी वेदना हरती।।

अग्रसेन अरु शूरसेन ने, स्वास्थ्य लाभ के किए उपाय।
अनेक गुणी वैद्य बुलवाए, किन्तु हुए वे सब निरुपाय।।

मृत्यु की काली छाया, वृद्ध नृपति को दिखती थी।
मोह त्याग अपनों का मानव, अंतरात्मा कहती थी।।

एक रात्रि श्री वल्लभ ने, सब प्रिय जनों को याद किया।
पास बुला कर सर्व जनों को, अपना आशीर्वाद दिया।।

कहने लगे नृपति सब से, "यह असार संसार महान्।
एक दिवस नर छोड़ सभी को, करता है जग से प्रस्थान।।

धन, वैभव, गौरव, आयु, रूप, सब मिथ्या-अस्थाई है।
त्याग इन्हें मानव जाता है, सच्ची धर्म-कमाई है।।

यह संसार निश्चय सराय है, जो आता वह जाता है।
एक धर्म ही सच्चा साथी, नर को जो अपनाता है"।।

कहा अग्र से नृप वल्लभ ने, "समय विदा का आने वाला।
जियो सदा जीवन सुख से, जाता है जाने वाला।।

निज माता की सेवा करना, उसका ध्यान सदा रखना।
होए विकल न कभी जीवन में, ऐसा सब उपाय करना"।।

शूरसेन को किया प्यार था, अपना आशीर्वाद दिया।
सेवा करना निज भ्राता की, यह अन्तिम उपदेश किया।।

पुत्रवधू तीनों ने सादर, किए श्वसुर के दर्शन।
अश्रु बह रहे थे आँखों से, सब ने स्पर्श किए चरण।।

"रहो सदा सुख से जीवन में, सौभाग्यवती हो पुत्रवती।
राजवंश की शोभा सब हो, पति चरणों में बढ़े रती"।।

कहा वल्लभी से राजा ने, "एक दिवस सबको जाना।
बनो विकल मत है प्राणेश्वरि, मेरे पीछे तुम आना।।

प्रभु चरणों में अब जाता हूँ, मेरा काम समाप्त हुआ।
करो विदा की सब तैयारी, समझो जीवन अंत हुआ"।।

स्नान किया श्री वल्लभ ने, लेट गये वे धरती पर।
ध्यान लगाया ईश्वर का, जपते थे जय श्री शंकर।।

मंत्रों का उच्चारण होता, गीता का शुभ पावन गान।
आराधन होता था प्रभु का, किया नृपति ने स्वर्ग प्रयाण।।

सबने देखी दिव्य ज्योति, मंगलमय तन से निकली।
अन्तरिक्ष में लीन हुई वह, मुरझाया तन ज्यों कुसुम-कली।।

परम शांत था मुख मंडल, चिर निद्रा में लीन हुए।
स्वर्ग सिधारे श्री वल्लभ, सबके थे संतप्त हिए।।

करुणामय था दृश्य दुखद, विकल सभी रोदन करते।
गौरव गाथा सभी सुनाते, आँसू आँखों से झरते।।

था विषाद अति छाया पुर में, राज काज सब बन्द हुआ।
सब पुरवासी परम दुखी थे, राज महल में शोक हुआ।।

मातु वल्लभी अति कातर थी, आँखों से बहती जलधार।
सौभाग्य लुटा था सतवन्ती का, जीवन में पाई थी हार।।

"कहाँ जा रहे मेरे प्रभुवर, जीवन के तुम कर्णधार।
भवसागर में छोड़ अकेले, कौन लगाएगा अब पार"।।

शवयात्रा निकली थी पुर से, करते सब अन्तिम प्रणाम।
दे रहे विदाई वे अपनी, अमर रहे श्री वल्लभ नाम॥

स्मशान में शव पहुँचा, चंदन की थी चिता बनी।
शंखों की ध्वनि हुई करुण, होती थी प्रभु नाम ध्वनी॥

कुछ ही क्षण में पावक ने, श्री वल्लभ तन ज्वलित किया।
भस्म हुआ भौतिक शरीर था, एक नया शुभ रूप लिया॥

जीर्ण वस्त्र को त्याग नृपति ने, पाया था नूतन परिधान।
भव बाधा से मुक्त हुए वे, करते थे सब गौरव गान॥

अग्रसेन अरु शूरसेन ने, पितु दश-गात्र विधान किया।
श्री गंगा में अस्थि बहा कर, मृतक कर्म सम्पन्न किया॥

हुए शुद्ध सब कर्मकाण्ड कर, देकर अतुलित दान।
विप्र भोज आयोजन करके, किया सर्व सम्मान॥

साधु संत की सेवा करके, करके शुभ गोदान।
देवालय में अर्चन करके, सुन कर गरुड़ पुराण॥

श्री अग्रसेन थे निवृत हुए, अपने पितृ कर्म से।
राजकाज में हुए प्रवृत वे, मुक्त हुए दुख से॥

श्री वल्लभ की स्मृति में, मंदिर शुभ्र किया निर्माण।
छत्री सुभग बनाई पितु की, जहाँ रमे थे उनके प्राण॥

एक सुखद उपवन बनवाया, सुरभित अति सुन्दर।
खुदा वहाँ पर एक सरोवर, निर्मल जल था सुखकर॥

आश्रम एक बनाया पावन, रहते जहाँ अतिथि गण।
सदावर्त था खुला वहाँ पर, पाते भोजन याचक गण॥

होता था कीर्तन सुललित, श्री वल्लभ की स्मृति में।
मातु वल्लभी वहाँ पहुँचती, शांति प्राप्त करती मन में॥

पति का स्मरण करती साध्वी, रहती व्यस्त भजन में।
दीन दरिद्र व्यथा हरती थी, मग्न सदा सत्कर्मों में॥

राजवंश से रक्षित, शोभित, श्री वल्लभ का सुखमय धाम।
आयोजन होते थे जिसमें, और सदा शुभ सतकाम॥

लगता मेला प्रतिवर्ष वहाँ, श्री वल्लभ की स्मृति में।
श्रद्धांजलि सब करते अर्पित, होते प्रसन्न निज मन में॥

जयति जयति जय श्री वल्लभ, वैश्य वर्ण के गौरव धाम।
याद करेगा अग्र-वंश, पिता! अमर रहे तुम्हारा नाम॥

भारत दर्शन (पूर्व)

श्री बल्लभ की दुखद मृत्यु को, तीन वर्ष थे बीत गए।
कुल के सभी बन्धु-बांधव थे, निज कर्मों में लीन हुए॥

हुए अग्रसेन चिन्तित थे, कैसे हो पितु का उद्धार।
सदा स्वप्न में पिता दीखते, करते मन में सदा विचार॥

सोचा मन में करूँ यात्रा, पूर्व दिशा प्रस्थान करूँ।
अपने पूर्वज सुगति हेतु, मैं गया-कर्म सम्पन्न करूँ॥

सौंप राज्य का भार शूर को, तीर्थाटन प्रारम्भ किया।
आह्वान किया सब पितृों का, प्रथम श्राद्ध सम्पन्न किया॥

मातु बल्लभी साथ चलीं, माधवी, नागसुता के संग।
बढ़े अग्रसेन यात्रा हित, मन में थी अति तीव्र उमंग॥

पूरब दिशि की ओर चले, प्रातः में था सूर्य उगा।
अरुण राग से रंजित नभ था, मन में नूतन भाव जगा॥

भारत देश हमारा विस्तृत, प्रकृति छटा मन भाई।
अति पावन यह भूमि मनोहर, महिमा सबने गाई॥

कहते हैं बैकुंठ अलौकिक, देवों का सुरधाम।
नन्दन वन-सा उपवन सुन्दर, देता है आराम॥

किन्तु जन्मभूमि की आभा, अनुपम है सुखदाई।
भारत माता रम्य भूमि, देवों ने महिमा गाई॥

संत जनों के आश्रम जा, करते अग्र उन्हें प्रणाम।
करते श्रवण उपदेश सभी से, धर्मलाभ लेते अभिराम।।

मातु बल्लभी ध्यानमग्न हो, प्रभु का चिन्तन करतीं।
मुक्ति लाभ हित ईश्वर से, सदा कामना करतीं।।

माधवी, नागसुता सदा-सर्वदा, करती थीं सेवा।
ध्यान सास का रखती थीं, पति की बनीं सदा सुखदेवा।।

चित्रकूट तीरथ जा पहुँचे, अग्रसेन सुखधाम।
मंदाकिनी जहाँ बहती सुन्दर, रमे जहाँ श्रीराम।।

विंध्य देश की छटा निराली, चित्रकूट अभिराम।
कण-कण है जिसका अति पावन, बना हुआ जो गौरवधाम।।

आगे बढ़े अग्रसेन थे, हुए प्रसन्न लख कलिंग देश।
गौरवमय जिसका यश उन्नत, देता जो है यह सन्देश।।

है स्वदेश अपना अति प्यारा, स्वतंत्रता सर्वस्व।
रक्षा करो सदा सब मिल कर, बना रहे अपना वर्चस्व।।

महिमा कलिंग की अद्‌भुत है, सुखद तीर्थ कोणार्क महान्।
उदित प्रभाकर होकर जिसमें, करे प्रसारित स्वर्णिम गान।।

सूर्यदेव का मंदिर सुखमय, देवोपम अति ज्योतिर्मय।
भरे अलौकिक वीर भाव जो, करता जन को सदा अभय।।

बढ़े अग्रसेन यात्रा में, पहुँचे जगन्नाथ के धाम।
पुरी निराली, अति विशाल, दर्शन कर सब हुए सकाम।।

अति रमणीक यहाँ का मंदिर, लख करके सुख पाया।
श्री जगन्नाथ प्रभु के दर्शन कर, सबने शीश झुकाया।।

रथ यात्रा है जिसकी सुन्दर, गौरवमय भगवान।
भारत जनता दर्शन करती, पाती मुक्ति महान्।।

सागर जिसके तट छूता है, भूमि यहाँ की परम पवित्र।
चावल का है भोग सुखद, बना प्रसाद स्वादिष्ठ, विचित्र।।

श्री अग्रसेन ने अति पुलकित हो, सागर में स्नान किया।
भेंट नारियल की कर अर्पित, वरुण देव को नमन किया।।

दर्शन करके जगत प्रभू के, पावन स्तवन किया।
भक्त जनों को सुख पहुँचाया, स्वर्ण कलश था भेंट किया।।

पुरी यात्रा हुई पूर्ण, अग्रसेन चले गंगा सागर।
यात्रियों का बेड़ा विशाल था, देख रहा जल का आगर।।

बढ़ा जा रहा पोत अनोखा, जिसका पाल विशाल।
पतवार चलाते नाविक थे, मछुए फैलाते थे जाल।।

वाद्य वृन्द बजते सुमधुर थे, होता नृत्य सुखद।
गायक गण थे गीत सुनाते, नभ में छाए घोर जलद।।

कभी अँधेरा छा जाता था, कभी प्रगट होता आलोक।
ताराओं का दृश्य निराला, हरता था जो मानव शोक।।

आलोकित होता रवि सुखकर, हृदय कमल विकसाए।
गंगा सागर पुण्य तीर्थ, लख सब यात्री हरषाए।।

किया प्रणाम श्री अग्रसेन ने, पावन बंग जलधि को।
जिसकी गोदी में गिरती, अति पावन श्री गंगा को।।

पुण्य स्थल है अति पावन, श्री कपिल देव का सुखमय धाम।
करते ऋषिवर जहाँ तपस्या, लगा समाधि करते विश्राम।।

स्मरण किया श्री अग्रसेन ने, उस पावन गौरव गाथा को।
[नृपति सगर ने यज्ञ रचाया, अश्वमेध आयोजन को।।

छूटा घोड़ा तीव्र गति से, पवन वेग से आगे बढ़ता।
साठ सहस्र, सुत सगर नृपति से, जो था रक्षित होता।।

(अष्ठ एक शत)[1] यज्ञ विशद, सगर नृपति के पावन।
यदि हो जाएँ पूर्ण कहीं, तो नृप पाएँ इन्द्रासन।।

---

१. एक सौ आठ।

यही सोच कर सुरपति ने, अश्व यज्ञ का पकड़ लिया।
पहुँच कपिल के आश्रम में, ऋषि समीप था बाँध दिया॥

अति विस्मय थे तनय सगर के, साठ सहस्र बलवान।
खोजा अश्व नहीं था पाया, परम विकल थे उनके प्राण॥

जल थल नभ सब ढूँढ चुके थे, नहीं अश्व को पाया।
ध्यान लगा कर सगर सुतों ने, धरती को खुदवाया॥

सागर बीच परम सुन्दर था, ऋषि आश्रम सबने देखा।
बँधा हुआ था अश्व वहाँ पर, हर्षित हो सबने पेखा॥

समाधिस्थ वहाँ कपिल मुनि, घोर तपस्या करते थे।
प्रभु का नाम स्मरण करते, श्रेष्ठ साधना रत थे॥

सगर सुतों ने उनको देखा, उद्दंड भाव मन में आया।
"पकड़ो चोर यहाँ है बैठा" ऐसा उनने शब्द सुनाया॥

खुली समाधि कपिल मुनि की, क्रोध उमड़ मन में आया।
लगा ध्यान नहीं फिर से उनका, सोचा किसने मुझे सताया॥

नेत्र खोल मुनि ने कोपित हो, सबको अपना शाप दिया।
साठ सहस्र सगर सुतों को, कोप-अग्नि में भस्म किया॥

रुका यज्ञ था सगर नृपति का, दारुण दुख पाया।
निज पुत्रों की कुगति देख, उसका मन भर आया॥

कैसे होवे मुक्ति सुतों की, किया नृपति ने श्रेष्ठ विचार।
स्वर्ग लोक से गंगा उतरे, तब होगा इनका उद्धार॥

किया प्रयास महा जीवन में, साधन किए अनेक।
देव सरित नहीं प्रसन्न हुई, पूरी हुई ना टेक॥

हुए भागीरथ सगर वंश में, किया गंग आराधन।
स्तुति करके श्री गंगा की, किया पूर्ण अपना व्रत पावन॥

हो प्रसन्न सुर सरिता बोली, "स्वर्गधाम में रहती हूँ!
महाप्रबल मेरा प्रवाह है, कौन सँभालेगा, कहती हूँ॥

महादेव होएँ यदि प्रस्तुत, धारण करे मुझे शिर पर।
स्वर्ग धाम को छोड़ बहूँ मैं, वास करूँ धरती पर॥

हुई तुष्ट तेरे तप से, प्रसन्न करो श्री शंकर।
कैलाशी होएँ यदि प्रसन्न, ग्रहण करे मुझको सत्वर"॥

किया नमन भागीरथ ने, पहुँचे स्वयं शिखर कैलाश।
ध्यान मग्न श्री शिव को पाया, किया कठिन उपवास॥

नृपति भागीरथ लीन हुए, घोर तपस्या सेवा में।
संतुष्ट किया श्री आशुतोष को, सफल हुए आराधन में॥

नेत्र खोल श्री महादेव ने, भक्त भागीरथ देखा।
"कार्य कौन है कठिन तुम्हारा, क्या कोई कठिन भाग्य रेखा"॥

कही भागीरथ ने स्वयं कथा, कैसे हो पितृोद्धार।
भस्म पड़े वे कपिलाश्रम में, करे मुक्त गंगा की धार॥

"प्रभो कठिन सुर सरिता धारा, महा शक्ति मय तीव्र प्रवाह।
ग्रहण करो यदि आप जटा में, पाए भू पर गंगा राह"॥

खड़े हो गये महारुद्र थे, फैलाई थी जटा विशाल।
आह्वान किया श्री गंगा का, चमक रहा उनका शशिभाल॥

गर्जन कर सुर सरिता ने, स्वर्ग लोक से किया प्रयाण।
गिरती नभ से जलधारा थी, कर रहे भागीरथ गंगा गान॥

जय जय जय श्री गंगे पावन, स्वर्ग लोक से आई।
अति विस्मित हो देखा जग ने, महादेव की जटा समाई॥

रोक लिया था महारुद्र ने, अपने शिर पर गंगा को।
बढ़ न सकी सुर सरिता आगे, जान गई शिव शक्ति को॥

कहा गंग ने भागीरथ से, करो प्रार्थना श्री महेश की।
मुक्त करे निज जटा जाल से, राह बने मम बहने की॥

भागीरथ ने अति पुलकित हो, श्री शंकर स्तवन किया।
आशुतोष ने हो प्रसन्न, श्री गंगा को मार्ग दिया॥

जटा जूट को शिथिल किया, निकल पड़ी गंगा की धारा।
गिरि कैलाश से उतर गंग ने, गंगोत्री का लिया सहारा॥

कहा भागीरथ से गंगा ने, निज रथ शीघ्र चलाओ।
मार्ग बताओ नृपति श्रेष्ठ, अपना काम बनाओ॥

चले भागीरथ गंगोत्री से, शैल हिमालय किया प्रणाम।
ऋषिकेश को पार किया, हरिद्वार में लिया विश्राम॥

पुलक उठी गंगा की धारा, पावन स्थल किया अभिराम।
सप्तऋषि के आश्रम पावन, बने सभी थे अति सुखधाम॥

जह्न ऋषि के आश्रम पहुँची, मुनि ने थी गति रोकी।
पान किया श्री गंगा का, नृप ने विषम समस्या अवलोकी॥

करी प्रार्थना थी ऋषि से, प्रभुवर करो कृपा सेवक पर।
मार्ग बताओ सुर सरिता को, हो प्रसन्न अपने जन पर॥

हर्षित हो श्री जह्न ऋषि ने, निज जंघा को चीर दिया।
प्रगट हुई गंगा माँ, मुनि ने जाह्नवी नाम दिया॥

भागीरथ ने यान बढ़ाया, गंगा पीछे चलती थी।
सोरों, विठुर, कर्णपुर पार किए, हो प्रसन्न बढ़ती थी॥

पावन प्रयाग की पुण्य भूमि, श्री गंगा का बना निवास।
बनी त्रिवेणी सुन्दर सुखमय, तृप्त करे भक्तों की प्यास॥

आगे बढ़ी देव सरिता थी, वाराणसि में किया प्रवेश।
हर्षित हो कल कल बहती वे, जहाँ बसे हैं श्री विश्वेश॥

चले भागीरथ आगे सत्वर, पाटलिपुत्र में पहुँच गए।
बंग भूमि में कर प्रवेश वे, अपने मन में मुदित हुए॥

श्री गंगा माँ थी अति अथाह, प्रगट हुई धाराओं में।
लीन हुई वे बंग-जलधि में, पहुँची कपिलदेव आश्रम में॥

भस्म बहाई सगर सुतों की, उनको दिया स्वर्ग का धाम।
जय सुर सरिते, गंगा सागर, करता सब जग तुम्हें प्रणाम॥]

श्री अग्रसेन ने सपरिवार, गंगा सागर गुण गाया।
चले वहाँ से अग्र नृपति, मन था अति हरषाया॥

बंग भूमि में पहुँचे फिर वे, दर्शन कर काली का धाम।
देखी अमित छटा निराली, महाशक्ति को किया प्रणाम॥

असम भूमि में पहुँचे नृपवर, देखा मणिपुर, ज्योतिष प्राग।
अरुणाचल देखा सुखदाई, बढ़ने लगा सुखद अनुराग॥

ब्रह्मपुत्र में स्नान किया, अरु पहुँचे मान सरोवर।
अद्भुत लख शोभा निसर्ग की, कहने लगे जयति जगदीश्वर॥

किए स्वर्गसम पुण्यभूमि के दर्शन, अग्र नृपति ने।
पाया सुख अवर्णनीय अनुपम, पूर्ण हुए थे सपने॥

पहुँच गए श्री अग्रसेन थे, सुखद भूमि नेपाल।
दर्शन कर श्री पशुपति के, आँखें हुईं निहाल॥

पावन प्रदेश लुम्बनी देखा, कपिलवस्तु सुखदाई।
जनकनंदिनी की मिथिला पुरि, मन में थी अति भाई॥

हुई यात्रा पूर्व दिशा की, वैद्यनाथ सुखधाम।
दर्शन करके महादेव के, पाया अति आराम॥

अति हर्षित थे अग्रसेन, पहुँचे गया पुरी अभिराम।
निज पित्रों के श्राद्ध निमित्त, करने अपना काम॥

नमन किया श्री अग्रसेन ने, पुण्यमयी वसुधा को।
करने लगे श्राद्ध सुकर्म, पित्रों के उद्धारण को॥

गर्ग ऋषि कहते थे विभु से, धन्य अग्र अभिराम।
अपना वंश किया आलोकित, अमर रहेगा नाम॥

*

दशम सर्ग : श्राद्ध

गया श्राद्ध[1]

श्री विष्णु का स्मरण करके, अग्रसेन सुखधाम।
निज पित्रों की मुक्ति हेतु, करने लगे कर्म अभिराम॥

गौड़ पुरोहित कर आमंत्रित, पावन आशीर्वाद लिया।
आदि गंग पुन पुन सरिता में, अपने पितु को पिंड दिया॥

तीन सौ साठ वेदिका निराली, होता था जहाँ श्राद्ध कर्म।
सोलह तिथि में पूरा करके, यात्री अर्जित करता धर्म॥

पूर्णमासी को अग्रसेन ने, फल्गु सरित में श्राद्ध किया।
खीर भात का पिण्ड बनाकर, पित्रों को प्रदान किया॥

प्रतिपदा पिण्ड आटे का, ब्रह्मकुंड में भेंट किया।
प्रेतशिला, श्री राम शिला, राम कुण्ड में दान दिया॥

द्वितीया पिण्ड पंचरत्न का, पंचतीर्थ में किया समर्पित।
उदीची, कनखल, दक्षिण मानस, श्री गदाधर को अर्पित॥

तृतीया पिण्ड सुहाना, सरस्वती में पंचामृत से कर स्नान।
मातंगवादी, धर्मण्यकूप, बौद्धगया में किया प्रदान॥

बौद्ध गया का महत्त्व निराला, अक्षय वट सुखदाई।
गौतमबुद्ध की तपस्थली, सब जग के मन भाई॥

तिथि चतुर्थी श्राद्ध शुभ, ब्रह्म सरोवर सम्पन्न हुआ।
काकवली, तारक ब्रह्मा, अम्र सिंचन में पूर्ण हुआ॥

---

१. 'गया श्राद्ध' प्रसंग' गया तीर्थ माहात्म्य' के आधार पर काव्यबद्ध किया गया है। रचयिता मूल लेखक का आभार स्वीकार करता है।

पंचम तिथि का श्राद्ध सुहाना, विष्णु, ब्रह्म, रुद्र पद हुआ पूर्ण।
अग्रसेन ने भक्ति भाव से, पितृ मोक्ष हित किया सम्पूर्ण॥

षष्ठी तिथि का श्राद्ध कर्म, कार्तिक पद में हुआ सभक्ति।
दक्षिणाग्नि, ग्राहपत्यादि, जाह्नवीयादि पद में अनुरिक्ति॥

तिथि सप्तमी श्राद्ध हुआ, सूर्य, चन्द्र, गणेश पद में।
संध्याग्निपद, भाव संध्यादिपद, दधीचि पद में॥

तिथि अष्टमी श्राद्ध हुआ, कण्वपद, मतंगपद पावन।
क्रौंच पद, अगस्त पद, इन्द्र पद, कश्यप पद, शोक नशावन॥

तिथि नवमी का श्राद्ध किया, राम गया, सीता कुण्ड में।
बालू का था पिण्ड बनाया, दिया सिया ने दशरथ कर में॥

सौभाग्य वाचन दान दिया, हुए श्वसुर प्रसन्न मन में।
तिथि दशमी का श्राद्ध हुआ, गया सिर, गया कूप, मुण्ड पृष्ट में॥

एकादशि का श्राद्ध कर्म, आदि गदाधर भेट किया।
धौतपद-श्राद्ध, रजत-धातु का, अग्रसेन ने दान दिया॥

द्वादशी का श्राद्ध अग्र ने, भीम गया में किया सहर्ष।
गौ प्रचार, गदलौल तीर्थ में, पिण्ड दिया वन पुत्र आदर्श॥

तिथि त्रयोदशी का श्राद्ध हुआ, वैतरणी के तट पर।
गौदान किया, तर्पण दुग्ध से, सन्तुष्ट हुए पित्रेश्वर॥

चतुर्दशी तिथि पुण्यमयी, किया विष्णु पद पूजन।
पंचामृत से स्नान कराया, हुआ हर्षमय आराधन॥

आई अमावस्या महान्, अक्षय वट को नमन किया।
किया समर्पण खीर पिण्ड था, षोडश दान सहर्ष दिया॥

अंतिम श्राद्ध आश्विन शुक्ल प्रतिपदा का हुआ पूर्ण।
गायत्री घाट पर दही पिण्ड दे, अग्रसेन ने किया सम्पूर्ण॥

किया सुफल था प्राप्त नृपति ने, आचार्य दक्षिणा भेंट हुई।
धन, धान्य, वस्त्र, शैय्या सुवर्ण दे, श्राद्ध क्रिया सम्पन्न हुई॥

अति हर्षित हो आचार्य श्रेष्ठ ने अपना आशीर्वाद दिया।
महत्त्व सुनाया गया-तीर्थ का, अग्रसेन को मुदित किया।।

"सप्तपुरी में गया तीर्थ है, अति प्राचीन इसका इतिहास।
वायु पुराण में आता वर्णन, श्वेत वराह कल्प में कथा विकास।।

गया माहात्म्य प्रसंग अति पावन, वर्णन अति सुखकारी।
पित्रों का है सुगति प्रदाता, भव बाधा हरता भारी"।।

कथा सुनाई सनत कुमार ने, सुनते शौनकादि मुनिवर।
नारद ऋषि ने अनुरोध किया, कहो ऋषि यह गाथा मनहर।।

"ऐसा तीरथ कौन जगत में, जो नर मुक्ति प्रदान करे।
हो उद्धार पूर्वजों का, अखिल जगत संताप हरे"।।

सनत कुमार ने कहा, मुनिवरों, गया तीर्थ है परम महान्।
पावन पुण्यमयी धरती है, धर्म शास्त्र करते गुणगान।।

[प्राचीन काल में युग सतयुग में, दैत्य गयासुर प्रगट हुआ।
किया घोर तप गिरी कोलाहल, उसका श्वास निरुद्ध हुआ।।

घबराया था इन्द्र, देवपति, डोल गया उसका आसन।
पहुँच गया वह शरण ब्रह्म की, करता अपना दुख वर्णन।।

त्राहिमाम हूँ शरण आपकी, रक्षा करो हे ब्रह्मदेव।
हरण करो व्यथा सेवक की, जयति जयति हे आदिदेव।।

पहुँचे विष्णु गयासुर समीप थे, छुआ शंख से तन दानव का।
"अति प्रसन्न हम तेरे तप से, कल्याण हुआ वसुधा का।।

मनचाहा वरदान माँग ले, हो हर्षित अपने मन में।
पूर्ण हुआ तप दानव तेरा, यश छाया जगती तल में"।।

माथ नवा कर मुदित गयासुर, "कहने लगा सुनो भगवन्।
मन इच्छित वरदान प्राप्त हो, जिससे पावन हो यह तन।।

जितने जीव-जन्तु धरती में, मानव, असुर, प्रेत अरु देव।
करे स्पर्श यदि मेरे तन को, पाए मुक्ति, सुख-शांति सदैव"।।

कहा 'तथास्तु' श्री विष्णुदेव ने, किया गयासुर को कृतार्थ।
वरदान हुआ सफल ईश का, सभी जीव हो गए सनाथ।।

पशु-पक्षी अरु कीट पतंग, अन्य जीव, सुर, नर, दानव।
स्पर्श कर गयासुर शरीर का, योनि-मुक्त हुए ये सब।।

शंकित हुआ यमराज, लखा, उसका लोक हुआ खाली।
पहुँचा वह बैकुंठ लोक में, तप की महिमा परम निराली।।

धर्मराज ने नारायण को, अपना दुःख सुनाया।
नरक हुआ खाली जीवों से, अजब प्रभू की माया।।

दिया आश्वासन जगदीश्वर ने, "विकल न हो यमराज।
शासन सदा तुम्हारा होगा, पूर्ण करूँ मैं तेरा काज"।।

नारायण ने कहा ब्रह्म से, "करो याचना दानव से।
यज्ञ हेतु इसका तन माँगो, करो तुष्ट अनुनय से"।।

आदि देव श्री ब्रह्मा जी, पहुँच गया-सुर पास।
करने लगे याचना उससे, "पूर्ण करो मम आश।।

यज्ञ कर्म करना चाहूँ, नहीं भूमि कोई पावन।
जहाँ यज्ञ हो सके सफल, बनो तात तुम कष्ट नशावन।।

हुआ शरीर परम पावन है, पाकर विष्णुदेव वरदान।
यज्ञ हेतु यदि करो समर्पित, होए जगती का कल्याण"।।

पुलक उठा गयासुर दानव, सफल भाग्य निज माना।
यज्ञ कर्म के हेतु शरीर को, उसने देना ठाना।।

"असुर योनि, मैं जीव अपावन, हुआ पवित्र पा प्रभु वरदान।
करूँ समर्पण निज शरीर को, जग में निश्चय बनूँ महान"।।

हुई व्यवस्था महायज्ञ की, गया धाम की धरती पर।
लेट गया गयासुर दानव, उत्तर दिशि में शिर कर।।

असुर शरीर पर ऋषि-मुनियों ने, महायज्ञ का किया विधान।
प्रारम्भ हुआ धर्म यज्ञ वह, पाया दानव ने सम्मान।।

देखा सबने डोल रही है, प्रबल गयासुर की काया।
'रक्खो, यम, धर्म-शिला इस पर', ब्रह्मा ने आदेश सुनाया।।

हुआ न स्थिर तन दानव का, डोल रहा था करता कम्पन।
चकित हुए ब्रह्मा यह लख कर, करने लगे विष्णु का वंदन।।

उद्धार करो जगदीश्वर पावन, स्थिर हो यह असुर शरीर।
धारण करके गदा हस्त में, प्रगट हुए विष्णु रणधीर।।

बैठ गए वे धर्म शिला पर, प्रभू गदाधर कहलाए।
धरती का दुख दूर हटाने, परम ब्रह्म परमेश्वर आए।।

ब्रह्मा, गणेश, सूर्य, लक्ष्मी, सरस्वती आसीन हुए।
इन्द्र, गुरु, वसु, दक्ष, गन्धर्व, देवशक्ति सब प्रगट हुए।।

बने सभी थे तीर्थ सुपावन, फल्गु नदी के तट पर।
हिलना बंद हुआ दानव का, अद्भुत शक्ति प्रगट कर।।

हुए प्रसन्न गदाधर प्रभु थे, कहा असुर वर माँग।
पुलक उठा गयासुर दानव, पाया सुरभित मुक्ति पराग।।

"यदि प्रसन्न हो करुणा सागर, दो अपना यह शुभ वरदान।
प्रलय काल तक इस धरती पर, गया क्षेत्र हो तीर्थ महान्।।

बसें सभी सुर इसी शिला पर, धर्मभाव फैलाएँ।
जो नर आए गयाक्षेत्र में, अतुलित पुण्य कमाएँ।।

मेरे नाम से गयाक्षेत्र हो, पावन मुक्ति प्रदाता।
पिण्ड दान दे जो धरती पर, बने पूर्वजों का त्राता।।

उद्धारक हो निज पूर्वज का, पाए आशिर्वाद।
तरें सभी पितृ मुक्ति प्राप्त कर, करें सदा जयनाद"।।

मुक्त किया प्रभु ने वर दे, हुआ गयासुर का उद्धार।
हुए पवित्र सभी जीव थे, कर स्पर्श फल्गु की धार।।

विप्र वृन्द सन्तुष्ट हुए थे, पाकर अन्न, द्रव्य का दान।
करते निवास जो परम सुखी थे, करते विष्णु-चरण का गान।।

एक समय सब विप्रवृन्द ने, महायज्ञ का किया विधान।
प्रेरित होकर द्रव्य लाभ से, लिया तीर्थ संकल्प महान।।

धुआँ यज्ञ का पहुँचा नभ तक, ब्रह्मा ने दुख प्राप्त किया।
प्रगटे धरती पर प्रभु थे, विप्रवृन्द को शाप दिया।।

"किया अयाच्य तुम्हें धन देकर, याचक तुम बन फिर आए।
लोभ बढ़ा है हृदय तुम्हारे, संतोष भाव बिसराए।।

सदा दरिद्र रहोगे अब तुम, निज करनी पर पछताओ।
उदर पूर्ति हो इस धरती से, आचार्य बनो, पुजवाओ"।।

देखा सबने देव बसे जो, गया धाम से लुप्त हुए।
दूध-दही की बहती सरिता, जल की लख सब चकित हुए।।

गृह में सभी रत्न-धन अर्जित, मिट्टी बने, विनष्ट हुए।
कल्प वृक्ष अरु कामधेनु भी, छोड़ धरित्री लुप्त हुए।।

विकल सभी थे विप्र वृन्द, निज करनी पर पछताए।
किया प्रसन्न फिर ब्रह्मदेव को, उनके गुण अनुपम गाए।।

दया दृष्टि की चतुरानन ने, द्विज समूह को किया अभय।
"जीवन यापन करो गया में, रहो सभी पर सदा सदय"।।

तब से गयाधाम पूजित है, करता पित्रों का उद्धार।
जाता है जो गृहस्थ वहाँ पर, उसका होता बेड़ा पार।।]

गया तीर्थ का माहात्म्य सुनाया, 'सनत' कुमार ने भली प्रकार।
नारद ऋषि ने सुना प्रेम से, हुआ प्राणिमात्र उद्धार।।

अति प्रसन्न थे अग्रसेन, कथा सुनी निज तीर्थ गुरु से।
विदा चाहते आचार्य प्रवर से, गया तीर्थ के विप्र वृन्द से।।

तीर्थ गुरु ने कहा अग्र से, "एक रात्रि विश्राम करो।
ध्यान करो अपने पित्रों का, सत्कर्मों से त्रास हरो।।

उद्धार हुआ है सब पित्रों का, पर वल्लभ नृप नहीं मुक्त।
आज रात्रि को जान सकोगे, कौन कर्म इनके उपयुक्त।।

त्रासित है वे विप्र शाप से, प्रेत योनि को भोग रहे।
कैसे हो उद्धार पिता का, करो उपाय जो स्वयं कहे।।

देख सकोगे आज रात्रि में, एक अनोखा दृश्य।
वल्लभ नृप के दर्शन होंगे, विचित्र रूप में अवश्य।।

करो तात तुम वह आयोजन, होए निज पितु का उद्धार।
विष्णु-चरण कल्याण करें, जो करते सबका बेड़ा पार"।।

अति चिन्तित थे अग्रसेन, रात्रि घोर अँधेरी छाई।
हुआ स्वप्न था अग्रसेन को, वल्लभ नृप थे पड़े दिखाई।।

कहने लगे पुत्र से गाथा, अपने सुखमय जीवन की।
धर्म राज्य वे जब करते थे, रक्षा करते थे पुर की।।

लखा दृश्य था अग्रसेन ने, अति विचित्र भयकारी।
विप्र शाप की वह गाथा थी, महाभयंकर विस्मयकारी।।

सुनी अग्र ने पितु वाणी थी "लोहागढ़ में श्राद्ध करो।
शाप ग्रसित मैं प्रेत रूप हूँ, सुत मेरा उद्धार करो"।।

विप्र कुमारी का शाप

चौंक गए थे अग्रसेन, देख रहे थे अद्भुत स्वप्न।
प्रताप नगर का वन्य देश था, उगा हुआ खेतों में अन्न।।

एक सरोवर शुभ सुन्दर था, अति निर्मल था उसका जल।
सीढ़ी विस्तृत बनी हुई थी, वायु चल रहा था शीतल।।

अग्रसेन ने देखी जल में, सुन्दर बाला की क्रीड़ा।
आनन्द मग्न हो स्नान करती, नहीं कर रही थी व्रीड़ा।।

लखा अग्र ने उसी स्वप्न में, वल्लभ नृप आते उस ओर।
बढ़े आ रहे सर समीप थे, मृगया हित लख हुए विभोर।।

भूले सुधि-बुधि लख बाला को, आँखों में छाया अनुराग।
सोच रहे थे क्या सुरकन्या, आलोकित कर रही तड़ाग।।

सुन्दरता अद्भुत थी उसकी, साँचे में तन ढला हुआ।
नयन कमल से, शशि मुख उसका, राकापति था प्रगट हुआ।।

स्वर्णिम-सा सुन्दर शरीर था, अंग-प्रत्यंग सब आकर्षक।
झीनी-सी-साड़ी पहिने थी, नयन नृपति के बने उपासक।।

पान कर रहे रूप सुधा को, खो बैठे थे स्वयं विवेक।
अपलक दृष्टि से देख रहे थे, उठे भाव थे मलिन अनेक।।

चौंक गई थी ब्रह्म कुमारी, "कौन पुरुष यह निम्न अजान।
आसक्ति दृष्टि से देख रहा है, कहाँ गया है इसका ज्ञान।।

कौन पुरुष तू है असंयमी, कुटिल दृष्टि से देख रहा।
करती स्नान कुमारी को तू, मलिन बुद्धि से निरख रहा"।।

बोध हुआ वल्लभ को तब था, हाय हंत क्या बैठा कर।
एकान्त स्थल में स्नान कर रही, विप्र कुमारी को लख कर।।

बोले वल्लभ "सुनो कुमारी, आँखों ने धोखा खाया।
निर्जन वन में मृग ढूँढ रहा, आखेट हेतु मैं था आया।।

दिखा नहीं मृग इस थल में, देख तुम्हें मैं चकित हुआ।
सुधि-बुधि भूल गया मैं अपनी, इसीलिए अपराध हुआ।।

वल्लभ नृप हूँ, प्रताप नगर का, करता हूँ इस थल शासन।
संताप अग्नि में अब जलता मैं, साक्षी है मम चतुरानन।।

विप्र कुमारी दयामयी हो, क्षमा करो अपराध।
प्रायश्चित्त करने को तत्पर, सत्य यही मैं निरपराध"।।

क्रोध हुआ नहीं शांत युवति का, 'किया भयंकर पाप।
प्रेत बनोगे तुम भविष्य में, देती हूँ मैं श्राप'।।

वल्लभ नृप थे अति पीड़ित, आँखों से आँसू झरते।
'क्षमा करो हे विप्र कुमारी,' करुण निवेदन वे करते।।

"अटल शाप है मेरा जानो, क्यों विवेक का हुआ विनाश।
पिता करे अपराध पुत्रि का, क्यों न होए सत्यानाश।।

शासक हो तुम पिता तुल्य, प्रजा तुम्हारी है संतान।
मन मलीन करते तुम हो, निश्चय यह अपराध महान॥

इसीलिए यह शाप दिया है, बनो प्रेत अविचारी।
भटको तुम निर्जन प्रदेश में, बनो अदृश्य कुविचारी॥

मुक्ति न पाओ तुम जीवन में, पाप कर्म की अग्नि जलो।
शिक्षा ले यह जगत तुम्हीं से, संताप अग्नि में पिघलों"॥

वल्लभ नृप थे दुखी हृदय में, नयनों से करुणाश्रु बहे।
रोम-रोम था विकल नृपति का, उनने कातर वचन कहे॥

"अंत करो तुम मेरे दुख का, अनजाने में पाप हुआ।
आत्म-ग्लानि से मैं लज्जित हूँ, हे प्रभु क्यों अपराध हुआ"॥

दुखी नृपति को देख सुन्दरी, कहने लगी "सुनो नृपराज।
अंत न होगा श्राप दिया जो, आएगी जीवन में लाज॥

पर यदि श्राद्ध करेगा कोई, लोहागढ़ में जाकर।
मुक्ति प्राप्त करोगे नृपवर, अपना पाप नशाकर"॥

कहने लगे नृपति वल्लभ थे, 'सुनो अग्र सुत तात।
लोहागढ़ में करो श्राद्ध मम, अन्त हो रही रात"॥

स्वप्न हुआ था अंत दुखद, अग्रसेन थे त्रस्त महान।
पितृ-मोक्ष हित संकल्प हुआ, किया गया से शीघ्र प्रयाण॥

हृदय दुखी था अग्रसेन का, मन में करुणा छाई।
वल्लभ नृप की प्रेत योनि की, घटना हृदय समाई॥

प्रताप नगर में पहुँचे नृप थे, एकत्र हुए थे धर्माचार्य।
कैसे पाएँ वल्लभ सद्गति, कैसे पूरा होवे कार्य॥

चिन्तन करने लगे सभी थे, देखे धर्म-ग्रन्थ सारे।
कैसे हो अपराध शमन, कैसे विमुक्त हों वल्लभ प्यारे॥

निर्णय किया कुलगुरु ने था, 'अग्रसेन प्रस्थान करें।
लोहागढ़ की करें यात्रा, नृप वल्लभ उद्धार करें'॥

भारत दर्शन (पश्चिम)

शुभ मुहुर्त की बेला में, अग्र, नृपति मतिमान।
लेकर संगी साथी अपने, प्रताप नगर से किया प्रयाण॥

चले जा रहे व्यग्र चित्त, पर्वत, सरिता करते पार।
अग्रसेन चिंतित थे मन में, कैसे होवे पितु उद्धार॥

राज्य अनेक पड़े थे मग में, मित्र राज्य इनको माना।
स्वागत हुआ विभिन्न पुरों में, सबने अपना पहिचाना॥

देवालय के दर्शन करके, आबू पर्वत पार किया।
विंध्याचल के निर्जन वन में, भूपति ने प्रवेश किया॥

नदी नर्वदा पार हुए, पहुँचे पावन मालव देश।
देव मन्दिरों के कर दर्शन, अर्जित करते पुण्य विशेष॥

राजस्थान में प्रविष्ट हुए, पहुँचे दशपुर धाम।
आयोजन करके सुधर्म के, किया वहाँ विश्राम॥

आगे बढ़े श्री अग्रसेन थे, मेवाड़ भूमि में किया प्रवेश।
शूरवीर सेनानी बसते, भारतीय गरबीला देश॥

अरावली की दुर्गम घाटी, अग्रसेन ने देखी।
मीना भीलों की वनस्थली, अग्र नृपति ने पेखी॥

नंगे भूखे जिनके बालक, कर आखेट करते निर्वाह।
स्वामिभक्त थे वे वनप्राणी, मर मिटने की चाह॥

भीलबाड़ा के भोलेभाले, यद्यपि तन से काले।
आत्मा से जो परम शुद्ध, जिनके व्यवहार निराले॥

चित्तौड़ भूमि देखी वीर धरा, जिसका दुर्ग महान।
हल्दी घाटी जिसकी दुर्गम, करती वीरों का आह्वान॥

अग्र नृपति थे हुए अग्रसर, पहुँचे पुष्कर पावन।
आराधन कर ब्रह्मदेव का, स्नान किया मनभावन॥

तीर्थों के गुरु श्री पुष्कर हैं, जहाँ चतुर्मुख प्रगट हुए।
महायज्ञ आयोजन होते, मनोकाम हैं सिद्ध हुए॥

पहुँचे अग्रसेन अजयमेरु, पुर का वैभव देखा।
राजस्थान का रंगमंच जो, प्रबल भाग्य-रेखा॥

वीरों की जो भूमि निराली, अतुलित वैभव धाम।
राज्यों की शिर मोर रही, किया अग्र ने यहाँ प्रणाम॥

चले अग्रसेन सत्वर आगे, पहुँचे मत्स्य-प्रदेश।
अति उत्तम सम्पन्न राज्य जो, धन-विद्या का देश॥

उच्च दुर्ग जिसका गौरवमय, पराक्रमी आमेर।
कलाकर्म जहाँ उन्नत होता, फैले मुक्ताओं के ढेर॥

शिल्प कर्म जहाँ उच्च कोटि का, नगर बना अभिराम।
ज्योतिष का जो केन्द्र रहा, विद्याओं का धाम॥

यात्रा की शेखावाटी की, जो सिकता आगार।
मर मिटने की जहाँ परम्परा, हुई विश्व में थी साकार॥

मीठी बोली जिसकी प्यारी, सादा भोजन, आचरण पुनीत।
जिसके सुपुत्र उद्योगवीर हैं, गौरवशाली रहा अतीत॥

पहुँच गये श्री अग्रसेन थे, लोहागढ़ के तीर्थ महान।
सिद्ध पुरी जो अति पुनीत, करते सब जिसका यशगान॥

गढ़ था सुंदर बना हुआ, जिसके सुदृढ़ द्वार।
देवालय जहाँ अति पावन, महासिद्धि आगार॥

मुक्तिधाम जो है प्रेतों का, पूजन कर्म प्रधान।
शिव-शक्ति का जहाँ निवास है, करते भैरव गान॥

नमन किया श्री अग्रसेन ने, लोहागढ़ के इष्ट देव को।
माथ नवाया अति विनम्र हो, तीर्थ स्थल आचार्य प्रवर को॥

वर्णन किया अपना दुख था, नृप वल्लभ की कथा सुनाई।
विप्र कुमारी शाप प्राप्त कर, कैसे प्रेत योनि थी पाई॥

हो उद्धार कैसे पितु का, अग्रसेन ने विनती की।
प्रेत योनि से हों विमुक्त वे, कैसे ? यही प्रार्थना की॥

कर्म सिद्ध थे आचार्य प्रवर, ध्यान किया, सब जान लिया।
आश्वासन दे अग्रसेन को, उन्हे पूर्ण था अभय किया॥

"एक मास तक रहना होगा, श्राद्ध कर्म सम्पन्न करो।
प्रेतराज को कर संतुष्ट तुम, अपने पितु को मुक्त करो"॥

अति प्रसन्त हो अग्रसेन ने, तीर्थ स्थल में वास किया।
एक मास तक कर आराधन, प्रेतराज संतुष्ट किया॥

कर्मकाण्ड किये बहुतेरे, उपवास जागरण किए अनेक।
दिया दान था अमित नृपति ने, पूरी की निज टेक॥

हुई साधना पूर्ण अग्र की, श्री वल्लभ थे मुक्त हुए।
प्रेतयोनि को त्याग, दिव्य बन, प्रभु चरणों में लीन हुए॥

दिया स्वप्न था अग्रसेन को "धन्य पुत्र ! मैं सुखी हुआ।
हुई कामना पूर्ण तुम्हारी, प्रेतयोनि से मुक्त हुआ॥

विप्रकुमारी शाप कठिन था, पुण्य कर्म से शमन हुआ।
जा रहा मुक्त हो स्वर्गलोक, तुमसे मैं संतुष्ट हुआ॥

वैभव सदा बढ़े अनूपम, जग में तुम यश प्राप्त करो।
सरस्वती तट रम्यभूमि में, अपना पुर निर्माण करो"॥

अग्रसेन ने मुक्त पिता को, सादर किया प्रणाम।
पाया आशीर्वाद जनक से, 'होएँ सफल तुम्हारे काम'॥

गर्ग ऋषि ने नृपति विभु को, पावन कथा सुनाई।
प्रेत योनि से वल्लभ नृप की, मुक्ति कथा मनभाई॥

*

एकादश सर्ग : अग्रोहा

वीर-भूमि दर्शन

आया अगला दिवस अग्र ने, लोहागढ़ से किया प्रयाण।
पंचनद प्रदेश की ओर बढ़े, किया नया अभियान॥

स्मृति जाग उठी नृप की, हुई कल्पना थी साकार।
कौन भूमि वह वीर प्रसूता, होगी जो उन्नति आगार॥

बढ़े जा रहे अग्रसेन थे, पहुँचे एक विपिन में।
दुर्गम पथ जिसका पथरीला, पहुँच गए निर्जन में॥

कुंजर पर नृप आरोहित थे, चले जा रहे आगे।
संगी साथी उनके पीछे, प्राण मोह थे त्यागे॥

देखा दृश्य अति विचित्र, सिंहनी प्रसव करती।
नृप ने लखा शेरिनी थी, निज शावक को जनती॥

बाधा हुई प्रसव में उसके, सिंह शिशु आया बाहर।
द्रुत गति से वह उछला ऊपर, हाथी पर था नाहर॥

घायल हुआ गजराज प्रबल, किया घोर चीत्कार।
लगा भागने अपने पथ से, सह न सका प्रहार॥

सिंह शिशु भी अति व्याकुल था, तुरत हुआ प्राणांत।
विकल सिंहनी हुई क्रुद्ध, शाप दिया नृप, वन अशांत॥

शिशु हीना मैं तड़प रही हूँ, क्यों न रहो तुम निःसंतान।
पुत्र न प्राप्त तुम्हें होएगा, कह कर त्याग दिए निज प्राण॥

अति स्तब्ध थे अग्रसेन, कैसा है यह चमत्कार।
वीर प्रसविनी विकट धरा, परम पराक्रम की आगार॥

देवज्ञ वहाँ संग चलते थे, उनसे किया विचार।
कौन धरा यह वीर प्रसूता, महा प्रकृति का उपहार॥

किया गणित देवज्ञ प्रवर ने, की अपनी भविष्यवाणी।
"वसुंधरा यह गौरवमय है, नृपति बनाओ रजधानी॥

स्थापित यदि राज्य यहाँ हो, लक्ष्मी का आवास।
निर्माण करो यदि नया नगर, मिटे प्रजा का त्रास॥

पथरीली यह भूमि विकट है, बहुरत्नों की खान।
परम स्वस्थ इसका जल है, अति निर्मल बलवान॥

निर्जन वन है सरिता तट है, विस्तृत है भू राज्य।
बसें नृपति यदि आप यहाँ पर, चमक उठेगा भाग्य"॥

हुए प्रसन्न अग्रसेन थे, मन में यह संकल्प लिया।
राज्य बसाऊँगा मैं अपना, मंगलमय फल प्राप्त किया॥

भारत के उत्तर में मेरा, होगा एक सुविस्तृत राज।
आदर्शों की पूर्ति करेगा, सफल करें प्रभु काज॥

भ्रमण किया उस कठिन भूमि में, निर्जन बन अवलोका।
छोड़े सैनिक परम बली, जिनने था थल रोका॥

करते रक्षा उस धरती की, अग्रसेन ने ध्वज फहराया।
वीर प्रसविनी नवलधरा पर, अपना उपनिवेश बनाया॥

लौट गए श्री अग्रसेन थे, अपने पुर प्रताप नगर को।
शूरसेन से मिले, सुनाया, निज यात्रा विवरण को॥

कर रहे कल्पना मन में थे, अग्रोहा रजधानी की।
कैसे हो रचना सुललित, एक भव्य नगरी की॥

हुआ विचार मंथन था पूरा, एक कल्पना चित्र बना।
शिल्पज्ञों, सर्वेक्षकों का दल, करने लगा विचार घना॥

प्रस्तुत हुई योजना विस्तृत, कैसे हो पुर का निर्माण।
अग्रोहा की रचना के हित, कैसे शिल्पी करे प्रयाण॥

अग्रसेन ने कहा शूर से, "शासन करो प्रताप नगर।
प्रस्थान करूँ मैं निज दल बल से, कल्याण करें ईश्वर"॥

शुभ मुहूर्त में अग्रसेन ने, मंगलमय प्रस्थान किया।
उत्तर भारत की समृद्धि हित, एक नया अभियान किया॥

विदा किया श्री अग्रसेन को, प्रताप नगर की जनता ने।
मंगल कामना करते सब थे, किया गान जन-जन ने॥

अपना दल लेकर अग्रसेन, पहुँच गए वन स्थल में।
विस्तृत एक वितान लगाया, वास किया निर्जन थल में॥

करते भ्रमण नृपति सैनिक संग, कण-कण था अवलोका।
साकार हुई कल्पना प्रबल थी, विस्तृत स्थल रोका॥

आया सुखमय वह दिन पावन, निर्माण कार्य प्रारम्भ किया।
'मन वांछित कामना सफल हो', सबने शुभ संकल्प लिया॥

अग्रोहा निर्माण

कह रहे गर्ग ऋषि कथा मनोहर, नृपति विभु सुनते मतिमान।
अग्रसेन कौशल का, करते मुनिवर सरस बखान॥

अग्रोहा निर्मित कर नृप ने, पावन सुयश कमाया।
अग्र-वंश प्रवर्तन कर, श्री अग्रसेन ने गौरव पाया॥

किया निवेदन विभु ने, 'क्यों अग्रोहा निर्माण हुआ'?
गर्ग ऋषि ने कहा "तात, उत्कर्ष हेतु यह कर्म हुआ॥

कर्त्तव्य यही है श्रेष्ठ नृपों का, नये नगर का हो निर्माण।
देवालय, उपवन, आश्रमों, भवनों की रचना महान॥

नये नगर यश गौरव देते, जनता का करते कल्याण।
होता विकास है कला कर्म का, श्रम जीवी का होता मान॥

उद्योग पनपता है नगरों में, धन सम्पत्ति का होता वर्धन।
संस्कृति का होता विकास है, नए नगर देते आकर्षण॥

अग्र-सुवन तुम दत्त चित्त हो, अग्रोहा निर्माण सुनो।
अग्रसेन की यशोवृद्धि का, अति पावन वृत्तान्त गुनो"॥

शुभ दिन मंगलमय मुहूर्त में, अग्रसेन ने व्रत ठाना।
कर आराधन इष्ट देव का, ऋषि-मुनियों को सम्माना॥

अग्रोहा निर्माण यज्ञ, मंगलमय प्रारम्भ हुआ।
परम ब्रह्म का आराधन कर, नृप ने स्वर्णिम कलश छुआ॥

पूजन करके वरुण देव का, किया विश्वकर्मा आराधन।
हुई उपासना धनपति की, विष्णु प्रिया का गुण गायन॥

पहले किया यज्ञ पावन, माँगा प्रभु से आशिर्वाद।
निर्माण कर्म होवे पूरण, किया ईश का जय जय नाद॥

अवलोका स्थल विशाल था, द्वादस योजन[1] का विस्तार।
कई लक्ष गृह बन सकें जहाँ, सभी सुखों के हों आगार॥

सरस्वती सरिता के तट पर, करके प्रभु पावन यशगान।
छोटे-छोटे शैल काट कर, किया सुदृढ़ दुर्ग निर्माण॥

परिखा खोदी चहुदिशि उसके, सरिता जल से उसे भरा।
निर्माण किया उस पर परकोटा, रक्षित हुई थी अग्रधरा॥

परकोटे पर बुर्ज बनाए, सैनिक गृह थे बने अनेक।
रक्षा करते थे नगरी की, हो न आक्रमण एकाएक॥

राजमहल था बना दुर्ग में, इन्द्रभवन सुशोभित था।
परम रम्य, सुन्दर, सुललित, कलापूर्ण आकर्षक था॥

चहुदिशि उसके नगर बसा था, रंग-बिरंगे शोभित धाम।
मार्ग बने थे विस्तृत जिसमें, यातायात का था आराम॥

परकोटे में बने हुए थे, रक्षा हित बहु विस्तृत द्वार।
लोहकपाट से बन्द द्वार थे, कर न सके कोई जन पार॥

---

१. छयानवे वर्ग मील।

प्रातः होते गर्जन करता, परिखा पुल खुलता था।
रात्रिकाल में सैनिक गण से, सेतु बन्द होता था॥

दुर्ग बुर्ज पर रक्षक रहते, करते थे तीरों से मार।
कोई कहीं लुटेरा आता, होता उस पर तीव्र प्रहार॥

उसके आगे उपवन सुन्दर, बने हुए थे अगणित खेत।
कृषि कर्म था होता सुखकर, अन्न उपजता था जन हेतु॥

बीच-बीच में इन खेतों के, बने हुए थे सुन्दर कूप।
सिंचन करते थे धरती का, उगे हुए थे वृक्ष अनूप॥

कई योजनों तक फैले थे, खेत, ग्राम अरु धाम।
मुदित सभी थे कृषक वहाँ के, पाते थे सुख-आराम॥

वन्यभूमि थी फैली विस्तृत, शैल, शिखर और झील अनेक।
सुखमय अति पावन ग्राम्य देश, जन मानस में भरा विवेक॥

उपनगर बसे थे अग्र राज्य में, उद्योग कर्म करते महान।
स्वावलम्ब था जन-जन में, अग्र नृपति का होता मान॥

मार्ग बने थे निष्कंटक, आवागमन निर्विघ्न सदा।
अग्रोहा में आते-जाते, होते नहीं कभी कष्ट-विपदा॥

नगर मध्य बसती थी जनता, सभी धर्म, व्यवसायों की।
प्रेमभाव से सब रहते थे, गरिमा सभी समाजों की॥

शिक्षा के आगार बने थे, साहित्य कर्म होता महान।
देवालय अभिराम बने थे, होता नित प्रभु गुण गान॥

अग्र नृपति का दुर्ग सुदृढ़ था, राजमहल अभिराम।
महालक्ष्मि का सुन्दर मंदिर, बना हुआ था शोभाधाम॥

होता था निशिदिन पूजन, विष्णु प्रिया महारानी का।
दर्शन करने आते थे नृप, प्रतिदिन जग जननी का॥

कलापूर्ण थे भवन महल के, निर्माण हुआ था सुखकर।
शिल्पकर्म अति श्रेष्ठ वहाँ का, प्रतिबिम्बित था होता दिनकर॥

रात्रि सदा शीतल होती थी, बरसाता था शशि आलोक।
त्रिविध पवन था सुखमय बहता, हरता था जन-जन का शोक॥

नौबत बजती सदा महल में, छाया था मधुमय बसंत।
वापी, तड़ाग, वाटिका सुन्दर, देते सबको सुःख अनंत॥

गज, हय, रथ, शालाएँ शोभित, गौशालाएँ पावन थी।
उपवन में पक्षी अनेक थे, नर्तन, गुंजन-ध्वनि मोहक थी॥

मणि माणिक से महल भरे थे, कोष अग्र का विपुल महान।
कुबेरपुरी-सा वैभव जिसका, होता था नित लक्ष्मी गान॥

अग्रोहा निर्माण किया था, अग्रसेन ने निज विक्रम से।
लक्ष-लक्ष मानव आमंत्रित, नगर बसाया निज कौशल से॥

जो आएगा अग्रपुरी में, प्राप्त करेगा वह सब भोग।
ग्रहण करेगा प्रतिगृह से, एक ईंट-मुद्रा सहयोग॥

बसे वहाँ थे अग्र जनों के, सवा लक्ष परिवार।
सहकारिता, बंधुत्व, सहयोग भाव का होता जहाँ प्रचार॥

समाजवाद की श्रेष्ठ भूमि है, सुदृढ़ हमारा समृद्ध समाज।
अग्रवंश की यही परम्परा, जनता का हो सुखद राज॥

निर्माण कर्म है गौरवशाली, बनता राष्ट्र महान।
स्वप्न सदा साकार बनाता, श्रम-जीवी भगवान॥

"जयति सत्य की रहे सदा ही, श्रम का जय-जयकार करो।
त्याग, पराक्रम, दानशील हो, मानव का सब दुख हरो"॥

विस्मित होकर देखा जग ने, अग्रोहा का शुभ निर्माण।
श्रमजीवी का कठिन पसीना, बह कर करता जन कल्याण॥

उन्मुक्त हृदय से श्रमजीवी, सरस राग युत गाता गान।
धरा खोदता, गारा ढोता, करता था संकल्प महान॥

"अग्रोहा निर्माण करेंगे, स्वर्ग लाएँगे धरती पर।
नर-नारी हम सब समान हैं, गर्व करेंगे मातृ भूमि पर॥

नहीं सहेंगे दमन किसी का, सदा सत्य व्रत धारेंगे।
निज पौरुष से कर सुकर्म, अपना देश सुधारेंगे॥

मातृभूमि के हम सेवक हैं, करते सहर्ष श्रमदान।
अग्रोहा का गौरव पावन, निशिदिन बढ़े महान्"॥

अग्र-राज्य-विस्तार

अग्रसेन ने निज पौरुष से, अग्रोहा निर्माण किया।
पूर्ण व्यवस्था कर, नगरी को, सुख सम्पति से युक्त किया॥

हुई समस्या थी नृप को, जल का संकट दुखदाई।
अग्रसेन ने निज कौशल से, यह भी विपति भगाई॥

ग्राम-ग्राम के नर नारी थे, सभी हुए उस थल एकत्र।
लगे खोदने विस्तृत सर थे, सजग हुआ जनतंत्र॥

निकला जल था भूमि-गर्भ से, फोड़ हृदय धरती का।
अग्र-भूमि थी बनी पयस्विनी, रूप धरा माता का॥

पाकर जल संतुष्ट हुए सब, कण कण में जीवन छाया।
अग्रोदक था प्रगट हुआ, क्षीर सिंधु लहराया॥

नहरें निकली उससे सुख कर, सींची धरती बंजर।
अग्र भूमि थी बनी उर्वरा, शस्य, श्यामला, मनहर॥

अग्रोहा का नगर राज्य था, सुख-सम्पति का भंडार।
कृषि, गौरक्ष, वाणिज्य कर्म का, जन जन हुआ प्रचार॥

अग्रोहा में बसे वैश्य जो, अग्र-सुवन कहलाए।
अग्रसेन थे पिता सभी के, संरक्षक मन भाए॥

पूर्णचन्द्र सम अग्रसेन थे, जग में सुधा बहाते।
अपनी कीर्ति कौमुदी से, वे नव-प्रकाश फैलाते॥

लोकतंत्र की शैली पर, शासन था जनतंत्र।
समाजवाद का स्वर गूँजा था, अदृश्य हुआ परतंत्र॥

शासन पद्धति आदर्श बनी थी, राम राज्य का ले आधार।
शासक रक्षक है जनता का, धारण करता है जनभार॥

आह्वान किया था शूरसेन का, "करो राज्य-विस्तार।
उत्तर भारत निष्कंटक हो, ग्रहण करो शुभ सेवा-भार॥

जनता का सहयोग प्राप्त कर, उसको सबल बनाओ।
विस्तार करो अब अग्र राज्य का, इस धरती को स्वर्ग बनाओ॥

देव-शक्ति और नाग-शक्ति भी, यक्ष और दानव बलवान।
भारत भू में सब बसते हैं, इनसे भी हो जन कल्याण॥

निर्माण करो अब शांति सैन्य का, दूर दूर तक जाओ।
मार्ग अहिंसा का अपनाकर, सबको अभय बनाओ"॥

ग्रहण किया संकल्प सभी ने, हो मानव उत्थान।
भेदभाव को दूर भगाएँ, सब नर होंवे एक समान॥

बढ़ी शांति सेना थी आगे, उत्तर दिशि की ओर।
शैल हिमालय तक जा पहुँची, जन जन हुआ विभोर॥

अग्र-सैन्य थी बढ़ी पूर्व में, पावन यमुना तट तक।
दक्षिण पहुँची नगर आगरा, पश्चिम में मरु थल तक॥

किया संगठित नवल राज्य को, अष्टादश[1] बस्तियाँ बसाईं।
उत्थान किया इन नगरों का, अग्र राज्य में आभा आई॥

आग्रेयों की पुरी निराली, ऊँचा अग्रसेन का नाम।
संरक्षण देता जनता को, अग्र-राज्य सुखधाम॥

---

१. डा० सत्यकेतु विद्यालंकार द्वारा रचित "अग्रवाल जाति का प्राचीन इतिहास" से उद्धत "भाटों के गीत" में इन १८ बस्तियों का उल्लेख है—
१. हिसार २. हाँसी ३. तोशाम ४. नारनोल ५. अलवर ६. कैथल ७. जींद ८. मेरठ ९. दिल्ली १०. सहारनपुर ११. जगाधरी १२. बुडियो नगर १३. नागर १४. उदयपुर १५. पानीपत १६. सिरसा १७. रोहतक तथा १८. अमृतसर

सवा लक्षगृह अग्रोहा में, वैश्य वर्ण के बसते थे।
कहलाते आग्रेय सभी थे, जनपद रक्षण करते थे॥

इतर वर्ग के सभी प्रजाजन, पाते थे रक्षण इनसे।
संरक्षक सबके अग्रसेन थे, पालन करते पितृ भाव से॥

यात्राओं-अभियानों द्वारा, अग्रसेन ने राज्य बढ़ाया।
भरत खण्ड के अन्य राज्य में, अपना मित्र भाव फैलाया॥

आग्रेय-राज्य की सुखद नीति थी, 'जिओ और जीने दो'।
पूर्ण संगठन हो अपना, पर अन्य राज्य भी रहने दो॥

पूर्व नृपति धनपाल कुबेर सम, दक्षिण के थे भूप महान।
उनकी परम्परा का अनुसरण, करते अग्रसेन मतिमान॥

सीमावर्ती सभी राज्य को, अग्रसेन देते सहयोग।
सबकी विपदा दूर भगाते, करते हितकर सभी प्रयोग॥

यदि कभी फैलती थी बीमारी, देती मानव को संताप।
संक्रामक रोग को दूर भगाते, अग्रसेन के कार्य कलाप॥

भारतवर्ष सुखी था तब, करता अग्रसेन का गान।
रामराज्य की याद दिलाता, सब जन एक समान॥

पूर्ण देश था ऋणी अग्र का, करता उनसे सच्चा प्यार।
नहीं भूमि पर बरन् हृदय पर, हुआ अग्र-अधिकार॥

मानवता की बढ़ी प्रतिष्ठा, जाग्रत जनवाणी थी।
अग्र राज्य की भारत-भर में, अनुपम सुयश-कहानी थी॥

*

द्वादश सर्ग : वंश वृद्धि

परशुराम का शाप

अग्रसेन का राज्य सुखद था, सभी प्रजाजन थे सानन्द।
उन्नति होती थी निशि दिन, विकसित होता सुख अरविन्द॥

स्थल शोभा अमित निराली, बना नगर था अति अभिराम।
होते खेल अनेक भाँति के, आयोजन होते अविराम॥

मन रंजन को अग्रसेन जी, जाते थे करने आखेट।
वन्य प्रदेश में अग्र राज्य के, ग्रामीणों से करते भेंट॥

सुनते दुख थे पीड़ित जन का, होता यदि कहीं अत्याचार।
अग्रसेन सब ताप मिटाते, स्थापित करते आचार॥

एक समय श्री अग्रसेन, सबको अभय दान देकर।
ग्राम्य क्षेत्र में जा पहुँचे, अपने कुछ साथी लेकर॥

सुनी नृपति ने करुण याचना, पहुँच गये वन में सत्वर।
आखेट किया हिंसक पशुओं का, लगे लौटने अपने घर॥

बीच मार्ग में नृप वर ने, अद्‌भुत एक दृश्य देखा।
बढ़े आ रहे परशुराम, भव्य स्वरूप उनका पेखा॥

गौर बदन है, नेत्र रक्त हैं, शोभित त्रिपुण्ड, है उन्नत भाल।
परशु हाथ में, जटा जूट शिर, उपनयन सुशोभित, वक्ष विशाल॥

अग्रसेन ने नमन किया, पाया मुनि से आशिरवाद।
"कहाँ विचरते हो जंगल में, कैसा सुनता मैं आर्तनाद"॥

कहा अग्र ने, "ऋषिवर पावन, मृगया की है यह हलचल।
पशुओं की रक्षा हित आया, हनन किये कुछ सिंह प्रबल"॥

परशुराम ने कहा अग्र से, "नहीं सहन कर सकता पाप।
रक्त बहाना वन्य पशु का, देना मृग गण को संताप॥

विश्व विदित है मैं नाशक हूँ, क्षत्रिय वर्ग का तुम जानो।
सहन न कर सकता हिंसा को, पाप कर्म इसको मानो॥

उचित यही है मैं तुमको, करूँ पराजित, वध कर डालूँ।
पर तुम धर्मी शुभ नरेश हो, दयाभाव इस कारण पालूँ"॥

कहा अग्र ने शिष्ट भाव से, "करूँ निवेदन मैं प्रभुवर।
मैं हूँ नृप इस श्रेष्ठ धरा का, करता धारण शस्त्र प्रवर॥

शासक का यह धर्म सदा, आयुध धारण करना।
करना अत्याचार शमन, आरत की रक्षा करना॥

मृगपतियों का सुना उपद्रव, करते थे पशुधन संहार।
कृषक वर्ग की रक्षा के हित, आया सुन मैं आर्त पुकार"॥

हुए रुष्ट थे भृगुपति इस पर, बोले वचन कठोर।
"सहन नहीं कर सकता आयुध, पाओ विपदा घोर॥

दीन भाव से मेरे सम्मुख, नमन करो दण्डवत प्रणाम।
क्षमा कराओ अपराध सभी, अथवा पहुँचों यम के धाम"॥

कहा अग्र ने "ऋषिवर त्यागो, अपना क्रोध विकार।
परम तपस्वी तुम जगती के, क्यों करते अविचार॥

राजदण्ड है जब तक कर में, राजा का यह धर्म महान।
धारण करे शस्त्र को निर्भय, अभय करे जन प्राण"॥

क्रुद्ध हुए सुन कर भृगुपति थे, अग्रसेन को ललकारा।
"सहन करो मेरे प्रहार को, जीवन क्षणिक तुम्हारा"॥

किया प्रहार था परशुराम ने, अग्रसेन के ऊपर।
निज कौशल दिखलाया नृप ने, परशु पड़ा धरती पर॥

अति विस्मित थे परशुराम, काँप गया था इनका मन।
"नहीं कभी देखा ऐसा, हुआ हाय क्यों दुर्बल तन॥

कहाँ शक्ति है गई अंग की, क्यों निष्फल हुआ प्रहार।
हाय हंत मैं देख रहा हूँ, क्यों निज जीवन में हार"॥

काँप गया था मुनि का मन, क्रुद्ध भाव से वे बोले।
"गर्व न करो निज पौरुष पर, बनो न मन में भोले॥

विप्र वंश प्रभुता सुज्ञात है, रखती शक्ति महान।
शस्त्र नहीं तो शाप प्रबल है, ग्रहण करो नादान॥

सुख न पाओ तुम जीवन में, रहो सदा निस्सन्तान।
दण्ड यही है नृपति तुम्हें, विप्र शाप है विषम महान॥

जब तक वृति न छोड़ो तुम, क्षत्रिय भाव की जीवन में।
देख न सकोगे संतति अपनी, पाओगे दुख निज मन में"॥

अति आतुर थे अग्रसेन, नहीं सहन कर सकते शाप।
विप्र अनादर को माना था, जिनने निज जीवन में पाप॥

"क्षमा करो हे ऋषिवर पावन, लौटा लो तुम अपना शाप।
प्रायश्चित करूँगा प्रभुवर, करो न मन में तुम अनुताप"॥

बोले परशुराम, "हे नृपवर! करो न विप्र अनादर।
शाप शक्ति उसकी महान है, शिक्षा ग्रहण करो सादर॥

आखेट कर्म को त्याग, सदय तुम, धर्म अहिंसा अपनाओ।
अथवा सहन करो संतति अभाव, निज करनी पर पछताओ"॥

प्रस्थान किया श्री परशुराम ने, संतप्त हृदय से, खिन्न मना।
दुर्भाग्य मानते अग्रसेन थे, लखा भयंकर ज्यों सपना॥

पहुँच गये वे निज पुर में, विकल हृदय थे नृपति महान।
करने लगे मनन निज मन में, करते जगदीश्वर का ध्यान॥

करने लगे ध्यान लक्ष्मी का, "अम्बे कष्ट निवारण हो।
करो मार्ग मेरा आलोकित, जीवन फिर सुखमय हो"॥

एक झलक देखी नृप ने, चारों ओर हुआ आलोक।
"ग्रहण करूँ मैं शरण गाधिसुत, दूर होयगा मेरा शोक"॥

विश्वामित्र का आगमन

एक दिवस श्री अग्रसेन, बैठे राजसभा में।
कर रहे विचार थे गहन, हो गम्भीर मुद्रा में॥

मंत्रीगण देते परामर्श, प्रश्न उठा संतति का।
वर्धित हो कैसे राजवंश, यही भाव था सबका॥

सहसा आया द्वारपाल, बोला जय नृपराज।
ऋषिवर विश्वामित्र पधारे, आज्ञा हो महाराज॥

राज सभा में हर्ष बढ़ा, अग्रसेन थे मुदित हुए।
सत्वर खड़े हुए आनन्दित, अपने मन वे मुदित हुए॥

आते देखा ऋषिवर को, था महाभव्य स्वरूप।
नमन किया श्री अग्रसेन ने, पूजन किया अनूप॥

सिंहासन पर बैठे ऋषि थे, देते आशिरवाद।
"वंशवेलि वर्धित हो नृपवर, होए जय जय नाद"॥

हुए नेत्र थे अश्रुपूर्ण, जलधारा थी प्रगट हुई।
भींग गये थे चरण कमल, ऋषि-पूजा सम्पन्न हुई॥

बोले ऋषिवर "नृप, क्यों दिखते विकल मना हो।
कौन दुख व्यापा अति तन में, कैसे शांत-व्यथा हो"॥

अग्रसेन ने कहा दुखी हो, "गहरा मन का घाव।
निशिदिन गड़ता शूल हृदय में, वन संतान अभाव॥

परशुराम का शाप विकट है, संकटमय है प्राण हुए।
कैसे वंश चलेगा मेरा, सभी सुख हैं स्वप्न हुए"॥

सुनी व्यथा थी गाधि सुवन ने, प्रश्न यही था उठा जाग।
जामदग्नि का शाप शमन हो, कैसे मिटे नृपति दुर्भाग॥

ध्यान लगा कर सोचा मुनि ने, शिव को करके याद।
समाधिस्थ हो गये ऋषी थे, हुआ अनाहद नाद॥

खोले नयन श्री विश्वामित्र ने, प्रगट किए उद्‌गार।
"मार्ग अहिंसा का अपनाओ, यदि चाहो उद्धार॥

आखेट कार्य है क्षत्रिय वर्ण का, हिंसामय यह कर्म।
त्याग करो तुम निज जीवन में, पाल अहिंसा धर्म॥

ग्रहण करो शिक्षा दशरथ से, करुणा से निज हृदय भरो।
होगी प्रकृति निरापद फिर से, आखेट कर्म सब बन्द करो॥

करो साधना माँ लक्ष्मी की, हो एक बार तप घोर।
नागसुता के साथ गमन करो, ब्रज मंडल की ओर॥

आराधन हो विष्णु प्रिया का, हो प्रसन्न कल्याणी।
संतति का वरदान मिलेगा, माँ कमला सुखदानी॥

शासन हो राजा का मन पर, बल का करो न प्रयोग।
हृदय परिवर्तन करो शत्रु का, यही अहिंसा योग॥

अग्रहायण शुभ मास धर्म का, करो साधना तात।
एक बार फिर करो तपस्या, होगा नवल प्रभात"॥

सुने शब्द ये गाधि सुवन के, अग्रसेन सन्तुष्ट हुए।
चरणों में झुक गये ऋषी के, अपने मन कृतकृत्य हुए॥

महालक्ष्मी आराधना

श्री अग्रसेन ने संतति हित, महालक्ष्मि का ध्यान किया।
नाग सुता से परामर्श कर, माँ कमला व्रत सहर्ष लिया॥

दम्पतिवर ने निराहार कर, अपने मन को शुद्ध किया।
ब्रज मंडल की ओर चल दिए, यमुना तट विश्राम लिया॥

एक मनोहर धरा सुरम्य थी, पावन अति छविवान।
वट, पीपल, जामुन, रसाल की छाया सुखद महान॥

इसी मनोरम थल पर नृप ने, निर्मित किया एक आश्रम।
नाग सुता के साथ वहीं पर, रहने लगे भूप उत्तम॥

कर आमन्त्रित देवज्ञों को, शुभ मुहुर्त सुधवाया।
ऋषि-मुनियों को किया निमन्त्रित, महायज्ञ करवाया॥

आह्वान किया था सुरपति का, माँगा आशिरवाद।
अग्निदेव की करी अर्चना, चाहा विमल प्रसाद॥

पावन मंत्र गूँजे नभ में, स्वर लहरी थीं प्रगट हुईं।
ब्रज मंडल की श्रेष्ठ धरा पर, सुखद् ऋचाएँ प्रत्यक्ष हुईं॥

करने लगे युगल दम्पति वर, कठिन तपस्या भारी।
माँ कमला का मंत्र जप रहे, तन मन की सुधि हारी॥

माँ लक्ष्मी के चरणों में था, इनका अविचल ध्यान।
संतति हित करते कठोर तप, जग जननी का गान॥

बढ़ता प्रकाश मन के भीतर, स्वर्गिक राग प्रगट होता।
संगीत भर गया था धरती पर, फूट पड़ा मन का सोता॥

"जयति जयति जय लक्ष्मी माँ, कोटि सूर्य सम ज्योर्तिमान।
सृजक, पोषक, प्रलय कारिणी, करती सर्व जगत कल्याण॥

आदि शक्ति तू माँ जगदम्बे, करुणा मयि सुखधाम।
ब्रह्मा, विष्णु, महेश वंदिता, करता सब जग तुझे प्रणाम॥

गौरव, वैभव, सुख की दाता, नमस्कार है कमला रानी।
सुनो प्रार्थना माँ जगदम्बे, करो पूर्ण सब आश भवानी"॥

आलोकित हुई तपोभूमि, प्रगटी लक्ष्मी महारानी।
कोटि सूर्य सम जिसकी आभा, हुई प्रसन्न जगत जननी॥

हो प्रसन्न अति महालक्ष्मि ने, अपना दर्श दिखाया।
लख कर युगल साधकों ने, सादर शीश झुकाया॥

करने लगे विनय दोनों ही, रोमांचित था गात हुआ।
सुधिबुधि भूल गये दर्शन कर, तन में नव अनुराग हुआ॥

हो प्रसन्न श्री माँ कमला ने कहा, "अग्र नृपति वर माँग।
सन्तुष्ट हुई मैं लख कर तप, सभी व्यथा को त्याग"॥

कहा अग्र ने, "जय जग जननी! पूर्ण करो आशा को।
पाऊँ संतति का अमोघ वर, सींचो वंश लता को॥

सब कुछ पाया मातु जगत में, यश, गौरव अरु राज्य।
किन्तु हाय सन्तानहीन मैं, मेरा यह दुर्भाग्य॥

परशुराम मुनि से शापित हूँ, महा व्यथा सहता हूँ।
वंश-वृक्ष वर्धन हित मैं, दीन निवेदन करता हूँ॥

होए बाधा दूर शाप की, अम्बे कष्ट हरो।
बनूँ वंशधर इस जगती में, आशा पूर्ण करो"॥

हुई प्रसन्न माँ लक्ष्मी थी, "नाग सुता वर माँग।
परम तुष्ट मैं सुभग सुन्दरी, निशि दिन बढ़े सुहाग"॥

नाग सुता ने नत शिर होकर, सादर किया प्रणाम।
"जयति जयति जग जननी माता, करती पूरण काम॥

करो सफल अभिलाषा मन की, जग जननी कल्याण करो।
वसुंधरा में युगों-युगों तक, अग्र वंश की वृद्धि करो॥

पूर्ण मनोरथ हो मातेश्वरि, अग्र वंश हो अजर अमर।
यश, गौरव फैले जगती में, रक्षक रहे सदा परमेश्वर"॥

कहा देवि ने अग्रसेन से, "पुत्र तपस्या पूर्ण हुई।
बन्द करो तप, साधन, व्रत, तुमसे मैं सन्तुष्ट हुई॥

गमन करो अब अपने घर को, राज्य करो सानन्द।
युगों-युगों तक सुख भोगो, पाओ परमानन्द॥

अखिल भूमि यह तेरे कुल में, वैभव से पूरित होगी।
तेरे कुल में जाति वर्ण के, नेताओं की सृष्टि होगी॥

तेरी अग्र वंशीय प्रजा का, तीन लोक में आदर होगा।
तेरे भुज बल का प्रसाद, सर्व जगत में व्यापित होगा॥

मेरी पूजा तेरे कुल में, जब तक बनी रहेगी।
तब तक तेरे अग्रवंश पर, मेरी कृपा सर्वदा होगी"॥

पाकर के वरदान अनोखा, श्री अग्रसेन जी सुखी हुए।
मिटी शाप की काली रेखा, जीवन में कृतकृत्य हुए॥

देकर के अपना अमोघ वर, जग जननी अति मुदित हुई।
करके अपनी कृपा भक्त पर, महालक्ष्मि अदृश्य हुई॥

गर्ग ऋषि ने नृपति विभू को, सुन्दर कथा सुनाई।
माँ कमला की उपासना, युग-युग में सुखदाई॥

संतति एवं शिक्षा

अग्रोहा में अग्रसेन का, लगा हुआ दरबार।
वंशवृद्धि का कार्य पूर्ण हो, होने लगा विचार॥

प्रश्न उठा था सदाचार का, संयम का पालन हो।
काम, भोग, आसक्ति, विलास पर सदा नियन्त्रण हो॥

आदर्श राम का था सम्मुख, मर्यादा अपनाओ।
किन्तु वंशवृद्धि हेतु, पुत्रेष्ठि यज्ञ रचवाओ॥

हुआ विचार मंथन था गहरा, राजधर्म का पालन हो।
गृहस्थ धर्म को नृप अपनाए, वंशवृद्धि सम्भव हो॥

एक पत्नि या बहुपत्नी, दोनों में हो किसका पालन।
राष्ट्रधर्म के हित में किसका, श्रेय रहेगा अनुपालन॥

निर्णय किया राज परिषद ने, "वंशवृद्धि का हो सदुपाय।
बहुविवाह का सम्पादन हो, एक यही है सुगम उपाय॥

एक पत्नि व्रत पालन सुधर्म है, करता जग कल्याण।
शांति, प्रेम रहते हैं स्थिर, करते सौख्य प्रदान॥

किन्तु विशेष शक्ति नृप की है, साधन प्रचुर महान्।
इसी शक्ति पर आधारित हो, अपनाता बहुपत्नि विधान"॥

राजा करे कर्म दशरथ का, या रामनीति अपनाए।
यह विचार का प्रश्न रहा है, जैसा जिसको भाए॥

संतानहीन श्री अग्रसेन ने, इस विचार पर ध्यान दिया।
वंश वृक्ष के सुविकास हित, गृहस्थधर्म स्वीकार किया॥

देवि माधिवी, नागसुता ने, बहुविवाह का किया विरोध।
बहुसंतति का प्रश्न बना था, करता मर्यादा अवरोध॥

अग्रोहा की नारी कहती, संतति-निग्रह अपनाओ।
करो न मनमानी उस पर, कभी न दुखी बनाओ॥

पर पुरुष वर्ग का विचार था, बहु संतति है आवश्यक।
वंश-वृद्धि अरु जनहित में, बहु विवाह के हो नृप पालक॥

आशा पूर्ण हुई भूपति की, कण-कण में था मोद समाया।
अग्रवंश हुआ सुपुष्पित, अग्रसेन ने विभु शिशु पाया॥

वंश वृद्धि को लक्ष्य बना कर, अग्र-नृपति ने किया प्रयास।
अपनाए थे बाल-बालिका, पूर्ण हुई जन-जन की आस॥

वीर गती पाई वीरों ने, हुए राष्ट्र पर जो बलिदान।
उनकी संतति के पोषण हित, करने को इनका कल्याण॥

संरक्षण था दिया नृपति ने, हुआ मोद सर्वत्र।
[1]अष्टादश कन्या हुई विदित, कहलाए थे चौवन पुत्र॥

बढ़े सभी थे पुत्र-पुत्रियाँ, अतिशय शोभावान।
लालन-पालन होता सबका, राजमहल आगार महान॥

ठुमुक-ठुमुक कर कन्याएँ, प्रांगण में नर्तन करती।
कलकल स्वर में भर किलकारी, जन-जन का वे मन हरती॥

---

१. यद्यपि यह अनुश्रुति है कि महाराज अग्रसेन के १८ पत्नियाँ, १८ पुत्रियाँ और ५४ पुत्र थे, इसका कारण १८ अंक की महत्ता है। महाराज अग्रसेन की केवल दो रानियों माधवी और नागसुता का ही पूर्ण वर्णन 'अनुश्रुतियों' में मिलता है। इनके तीन पुत्र विभु, विरोचन, और वाणी थे जिनका गर्ग गोत्र था। शेष सन्तानें महाराजा अग्रसेन की पोषित पुत्र-पुत्रियाँ थीं। यदि ये सभी महाराजा अग्रसेन की औरस सन्तानें होतीं तो अग्रवालों में पारस्परिक विवाह-सम्बन्ध वर्जित होते।

राजपुत्र सब क्रीड़ा करते, दर्शक जाते थे बलिहार।
माताएँ न्योछावर होतीं, लुटा रहीं जो अपना प्यार॥

नजर न लगे किसी छलिया की, कोई बाधा नहीं सताए।
लगा दिठोना गौरवर्ण पर, लख कर शशि था शरमाए॥

मोती झरते थे वचनों में, उनकी सुखद अदाएँ।
मनहर थे तोतले वचन, सुन कर नृप हरषाए॥

प्रांगण था स्फिटिक मणि का, प्रतिबिम्बित होती थी छाया।
देख रूप इनका मनमोहक, कामदेव था शरमाया॥

रंग-बिरंगे वस्त्र रेशमी, गुँथे हुए थे इनके केश।
नूपुर बजते थे पावों में, आकर्षक था सुखमय वेश॥

खेल-खेल में भाग महल से, गलियारों में आ जाते।
बालवृन्द से मिल कर, हर्षित, अपना प्यार जताते॥

सुखद बाल लीला थी सबकी, अजब निराला भोलापन।
ऊँच-नीच का भेद न समझें, देवोपम है यह बचपन॥

विभु बालक की छटा निराली, शशि शोभित तारागण में।
आलोकित होता दिनकर सम, भरता प्रकाश जनमानस में॥

बालवृन्द था बढ़ा आयु में, आया सुखमय शिक्षाकाल।
यज्ञोपवीत हुआ सबका था, आयोजन था हुआ विशाल॥

गर्ग ऋषि ने विद्यार्जन हित, अष्टादश आचार्य बुलाए।
सादर शिष्य दिए सब गुरु को, अमित दान पा हरषाए॥

गुरुकुल अष्टादश में पहुँचे, बालक अर्जित करते शिक्षा।
राजपुत्र थे सभी दे रहे, विविध भाँति की कठिन परीक्षा॥

राजपुत्रियाँ अग्र नृपति की, महलों में थीं पढ़तीं।
गृहस्थ धर्म की, कला, नृत्य की शिक्षा अर्जित करतीं॥

राजकुँवर थे ग्रहण कर रहे, शिक्षा धर्म, न्याय, युद्ध, शास्त्र की।
राजनीति, विज्ञान, अर्थ, वाणिज्य, कला, प्रशासन की॥

आचार्यों का दल था, छात्रवर्ग को शिक्षा देता।
आश्रमों और महलों में, विद्यार्जन निशिदिन होता॥

श्री अग्रसेन ने शिक्षा हित, अतुलित धन था दान दिया।
भूमि दान करके विकास हित, भवनों का निर्माण किया॥

राजपुत्र के साथ प्रजा के, बालक अनेक पढ़ते थे।
एक समान होता व्यवहार था, अनुशासन में रहते थे॥

पक्षपात था नहीं तनिक भी, राजपुत्र और प्रजापुत्र में।
समता का व्यवहार मिला था, स्नेह भाव था छात्र वर्ग में॥

अष्टादश आचार्य[1] श्रेष्ठ, शिक्षा देते अग्रोहा में।
ज्ञान प्रभा प्रकाशित करते, जागृति ज्योति जगाते मन में॥

शिष्य भाव था सब छात्रों में, पूर्ण ब्रह्मचारी थे।
घर-घर जाते थे भिक्षा हित, मातृ शक्ति आराधक थे॥

'भिक्षा दो माँ' नत मस्तक हो, शिष्य वर्ग करता प्रणाम।
माताएँ सब स्वागत करतीं, छोड़ सभी गृह काम॥

नारिवर्ग प्रति सम्मान भाव की, बालक शिक्षा लेते थे।
जनता से वे पोषित होते, जन सेवा व्रत लेते थे॥

अग्र वंश का बाल वृन्द यों विकसित होता।
भारत की भावी आशा का, शुभ सम्वर्धन होता॥

शिक्षा की आदर्श साधना, पूर्ण कर रहे अग्र सुवन।
निशिदिन होता नव विकास था, सुरभित था गृह उपवन॥

नृपति विभु थे अति प्रसन्न, करते गर्ग ऋषि का अर्चन।
अग्रवंश के वर्धन का, यह सुखमय सुन्दर वर्णन॥

*

१. आचार्यों के नामों के लिए देखिये स्वर्गीय श्री निरंजनलाल गौतम कृत 'अग्रोतकान्वय' चतुर्थ संस्करण पृष्ठ ५९-६०।

त्रयोदश सर्ग : यज्ञ कर्म

यज्ञ महिमा

अग्रोहा के नृपति श्री अग्रसेन की गौरव गाथा।
फैल रही थी दिग् दिगन्त में, सुन होता ऊँचा माथा॥

था वैभव अतुलित, विस्तृत उर्वरा वसुधा।
नगर निवासी सभी सुखी थे, सिंचित सर्वत्र सुधा॥

राजवंश का वृक्ष सुपल्लवित, अमित लहराया।
अखिल विश्व में अमल कमल-सा, सुयश सुहाया॥

नृप प्रसन्न थे हर्ष हृदय में अति लहराया।
उनके मन में एक दार्शनिक विचार आया॥

क्या यह वैभव, सुख, समृद्धि सदा रहेगी।
क्या वसंत के बाद जीवन में ग्रीष्म न होगी॥

मानव जीवन क्षणिक, कर्म का पुंज बड़ा है।
चलूँ प्रगति के पथ पर, निश्चय ही मार्ग कड़ा है॥

क्यों न अपनी कीर्ति अमर जग में कर जाऊँ।
करूँ धर्म की वृद्धि, निरन्तर सुयश कमाऊँ॥

यह शरीर है नाशवान, पर कर्म अमर है।
पुण्य कर्म ही जग में, निश्चय अमरत्व डगर है॥

पुत्र पुत्रियों की शिक्षा समाप्त होने को है।
दीक्षांत संस्कार भी सबके विधिवत् होने को है॥

संतति के शुभ विवाह भी करने होंगे।
भावी राज्य व्यवस्था के निर्णय भी लेने होंगे॥

मानव समाज की रचना भी करनी होगी।
वसुधा पर स्वर्ग लोक की रचना भी सम्भव होगी॥

मूल्यांकन करना होगा श्रेष्ठ विचारों का।
करना होगा प्रचार सर्वत्र धर्म भावों का॥

ये सब करने होंगे, पर होंगे कैसे, प्रश्न कड़ा है।
कौन साधना से होंगे सफल, विवेक बड़ा है॥

ग्रहण करूँ मैं मार्ग दर्शन, धर्म विज्ञों का।
अनुसरण करूँ मैं सुहृद भाव से सद्पुरुषों का॥

यही सोच कर अग्र नृपति ने मंतव्य सुनाया।
अग्रोहा के सभी श्रेष्ठ जनों को था बुलवाया॥

सुने विचार सभासदों ने अग्र नृपति के।
लगे सोचने मन में जटिल प्रश्न जीवन के॥

ध्यानमग्न थे ऋषिवर, कुल गुरु पावन।
गम्भीर गिरा से बोले वे वाणी संदेह नशावन॥

"करो यज्ञ के आयोजन नृप शुभ भू पर।
सफल मनोरथ होंगे भूपति इस धरती पर॥

रचो अठारह यज्ञ, अतुलित सुयश कमाओ।
अपनी करनी से नरपति, भू को स्वर्ग बनाओ॥

पाओगे शुभ कीर्ति, अमरता प्राप्त करोगे।
पूर्ण करो यज्ञ अष्टादश, आदर्श बनोगे॥

करो साधना, निराहार व्रत, सदाचरण हो।
महादेवी माधवि, नागसुता संग यज्ञ कर्म हो॥

सफल कामना होगी निश्चय नृपति तुम्हारी।
लक्ष्मी का वरदान फलेगा, जग में गौरव कारी"॥

किया समर्थन सभी जनों ने ऋषि वाणी का।
करो अष्टादश यज्ञ, सफल मनोरथ हो जीवन का॥

हुआ नृपति आदेश, "करो आयोजन महान्।
कल्याण राष्ट्र का होगा, सुयश मनोरम गान"॥

हर्षित हो कुल गुरु ने, मुहुर्त यज्ञ का साधा।
अष्टादश यज्ञ हेतु, करीं दूर सब बाधा॥

"यज्ञ भूमि का पूजन हो, मंगलमय सुखकारी।
आमन्त्रित हो सभी अतिथि, पूजनीय हितकारी॥

मंगल गाओ, नगर सजाओ, सब पुरवासी।
आह्वान करो श्री गणेश का, पावन शुभ राशी॥

करो अश्व तैयार, शुभ लक्षण मनहर सुन्दर।
श्री शूरसेन, नेतृत्व में, करे जो गमन सत्वर॥

करो यात्रा अखिल धरा की लो विजय वाहिनी।
गूँज उठे सव जग में, अग्रसेन की सुयश कहानी॥

अग्रोहापति को सब मिलकर नेता मानो।
आकर यज्ञोत्सव में मर्म, धर्म का जानो"॥

गुरु आज्ञा का पालन तुरत हुआ।
सभी तीर्थों का जल एकत्र हुआ॥

यज्ञ भूमि मंडप, सबने सुधर सजाया।
एकत्रित हो ऋषि-मुनियों ने यज्ञ रचाया॥

कर्म काण्ड के ज्ञाता, धर्म तत्त्व के गामी।
श्री गर्ग बने आचार्य, प्रथम यज्ञ के स्वामी॥

शुभ मुहुर्त में हुआ, यज्ञ प्रारम्भ।
श्री गणेश के पूजन से, आयोजन आरम्भ॥

किया देव आह्वान नृपति ने सत्वर।
"कल्याण करो, हो सफल कार्य विश्वंभर"॥

ऋषि-मुनियों ने मख की ज्योति जगाई।
उच्चारण कर मंत्र, ब्रह्म की महिमा गाई॥

राजा-रानी ने किया शुभ्र अश्व पूजन।
तिलक लगाया किया अलंकृत आनन॥

विजय पट्ट बाँधा शिर पर, स्वर्णिम सुन्दर।
लहराता अग्रोहा का, ध्वज मनहर॥

भाग चला द्रुत गति से, अश्व सजग।
पीछे-पीछे चली सैन्य, हुई धरा डगमग॥

शांति वाहिनी सेना थी, हर थल स्वागत पाती।
नहीं विरोध करता कोई, जनता गुण गाती॥

यदि कोई उत्पाती बढ़ आगे, अश्व रोकते।
अग्रसेन के सैनिक आगे बढ़, उसे टोकते॥

एक मास तक अश्व, दौड़ता रहा धरा पर।
जीत न सका उसे कोई, भारत भू पर॥

विजयी होकर तुरंग, लौट आया मंडप में।
पूजन किया नृपति ने, हुए वे हर्षित मन में॥

शुभ मुहुर्त में हुआ, अश्व वध यज्ञ भूमि में।
मोक्ष प्राप्त कर सैंधव, हुआ विलुप्त गगन में॥

तृप्त हुए सुर, द्विज, याज्ञिक और पुरोहित।
ग्रहण किया था यज्ञ भाग, क्षुधा हुई तिरोहित॥

आशिरवाद दिया ऋषि मुनि ने, दम्पति वर को।
प्रथम यज्ञ था हुआ पूर्ण, किया कृतारथ मन को॥

श्री अग्रसेन ने किया, **गर्ग** ऋषि का सत्कार।
नृपति तीन पुत्र, **विभू, विरोचन, वाणी** ने पूजा विविध प्रकार॥

दीक्षा ग्रहण की गर्ग ऋषि से, **गर्ग**[1] गोत्र कहलाए।
मनोकामना हुई सफल, हुए कार्य मन भाए॥

तत्सम रूप—१. गर्ग

अग्रसेन ने फिर द्वितीय यज्ञ का, शुभ संकल्प लिया।
पावन मंत्रों से आह्वान, देव वृन्द का सुखद किया॥

पूजन किया अश्व का पावन, परिक्रमा कर आया।
यज्ञभूमि में हुआ हनन फिर, धर्मभाव लहराया॥

स्वागत किया ऋषि **गोभिल** का, हुआ परम आह्लाद।
पावक, अग्नि, केशव सुपुत्र ने, पाया आशिरवाद॥

दीक्षित हुए ऋषि गोभिल से, **गोयल**[२] गोत्र कहलाया।
हुआ प्रकाश अलौकिक भू पर, जन जीवन लहराया॥

नृप ने किया तृतीय यज्ञ था, हुआ अश्व पूजन।
विजयी होकर लौटा वह था, उसका हुआ हनन॥

अग्रसेन ने **गौतम** ऋषि को, पूजा भली प्रकार।
विशाल, रक्त, धन्वी बुलवाए, हुआ गुरु सत्कार॥

दीक्षित हुए ऋषि गौतम से, किया गोत्र **गोइन**[३] धारण।
हुआ यज्ञ आनन्द पूर्ण था, और सस्वर सामवेद गायन॥

चतुर्थ यज्ञ प्रारम्भ हुआ, किया **वत्स** ऋषि सम्मान।
अश्वमेध की क्रिया पूर्ण कर, अग्रसेन ने पाया मान॥

धामा, वामा, पयोनिधि की, गुरु ने परीक्षा ली।
किया गोत्र **बंसल**[४] धारण, सविनय दीक्षा ली॥

पंचम यज्ञ हुआ पूर्ण था, अश्वमेध का हुआ विधान।
कौशिक ऋषि आह्वान हुआ था, किया नृपति ने अति सम्मान॥

कुमार, दमन, माली बुलवाए, दीक्षा पाकर मुदित हुए।
कंसल[५] गोत्र किया धारण था, सभी मनोरथ सिद्ध हुए॥

षष्टम यज्ञ प्रारम्भ हुआ, किया अश्व पूजन।
वाद्य बज उठे यज्ञ भूमि में, हुआ मनोहर गायन॥

तत्सम रूप—२. गोभिल, ३. गावाल, ४. वात्सिल, ५. कौशिक।

ऋषि **शांडिल्य** महा तपस्वी, यज्ञभूमि में थे आए।
आराधन था किया नृपति ने, पुर में सुख-सम्पति छाए॥

हुआ उत्सर्ग पूजित तुरंग का, पावन यज्ञ सुहाया।
गज, रथ, तुरंग, स्वर्ण दान कर, नृप ने पुण्य कमाया॥

मन्दोकन, कुण्डल, कुश ने, दीक्षा ली निज गुरु से।
सिंहल[६] गोत्र किया धारण था, पाया प्रसाद ऋषिवर से॥

सप्तम यज्ञ हुआ भू पर था, अग्रसेन नृप का।
मंत्रों से आहुति जागरित, जगा भाग्य जगती का॥

हुआ हनन अश्व उत्सव में, छाई कीर्ति महान्।
मंगल ऋषि को पूजा नृप ने, सर्व गुणों की खान॥

विकास, विरण, विनोद ने, पाया आशिर्वाद।
मंगल[७] गोत्र किया धारण था, हुआ परम आह्लाद॥

अष्टम यज्ञ के साज सजे थे, मन में मोद समाया।
बलिदान हुआ था यज्ञ, अश्व का, नृप ने पुण्य कमाया॥

जैमुनि ऋषि ने यज्ञ भूमि को किया सुशोभित।
अग्र नृपति के सर्व भाव से, हुए वे सादर पूजित॥

वपुन, वली, वीर बुलवाए, दीक्षित भली प्रकार।
जिंदल[८] गोत्र किया धारण था, पाया ऋषि से प्यार॥

आलोकित थी हुई भूमि, शशि ने अमृत बरसाया।
तांड्य ऋषि ने यज्ञभूमि में, मंत्रों को सस्वर गाया॥

नवम् यज्ञ में अश्व बढ़ा था, विजयी होकर आया।
हुआ हनन था हय पावन का, देवों के मन भाया॥

हर, रव, दंती तीन कुँअर, अग्रसेन मन भाए।
दीक्षित हुए भव्य यज्ञ में, **तिंगल**[९] गोत्र कहाए॥

तत्सम रूप—६. शांडिल्य, ७. मंगल, ८. जैमुनि, ९. तांड्य।

दशम् यज्ञ में नृपवर ने, किया महोत्सव भारी।
अश्व यज्ञ छोड़ा धरती पर, सर्वशक्तियाँ थीं हारी॥

बाँध न सका कोई तुरंग को, कर यात्रा वापिस आया।
हनन हुआ यज्ञ पावन में, स्वर्ग लोक था पाया॥

और्व ऋषि को पूजा नृप ने, किया सस्नेह आराधन।
दिए दान बहुविधि जनता को, खिला कमल सा आनन॥

दाड़िमी, दंत, सुंदर आए, दीक्षित हुए सुपावन।
ग्रहण किया गोत्र **ऐरन**[१०] था, हुए कार्य मनभावन॥

एकादश था यज्ञ हुआ, मंगलमय अभिराम।
पूजा अश्व चंचल गतिमय, लेता नहीं विराम॥

यज्ञभूमि में मृत्यु प्राप्त कर, स्वर्ग धाम पाया।
दिग् दिगन्त में हुआ सुयश, धर्म भाव छाया॥

धौम्य ऋषि को पूजा नृप ने, किया सुखद अभिनन्दन।
पाया आशिरवाद अतिथि से, हुए प्रसन्न चतुरानन॥

त्रि कुमार, **खर, गर, शुभ** आए, दीक्षित हुए सुजान।
धारण[११] गोत्र किया ग्रहण था, पाया सबसे मान॥

द्वादस यज्ञ हुआ आयोजित, सुख-सम्पत्ति का दाता।
नृप ने पूजा अश्व अनूपम, मरुत वेग मनभाता॥

यज्ञ मंडप में होकर पूजित, किया समर्पण प्राणों का।
आलोकित थी हुई भूमि, वढ़ा सुयश था नृप का॥

मुद्गल ऋषि को पूज अग्र ने, सुखमय आशिरवाद लिया।
यश वैभव पाया जगती में, पूर्ण सफल था यज्ञ किया॥

पलश, अनल, सुन्दर युवकों ने दीक्षा पाई।
धारण किया गोत्र **मधुकुल**[१२] था, जग में कीर्ति कमाई॥

तत्सम रूप—१०. और्व, ११. धौम्य, १२. मुद्गल।

यज्ञ त्रयोदश प्रारम्भ हुआ, अग्रोहा था मुसकाया।
हुआ सुशोभित कण-कण इसका, सजा तुरंग मनभाया॥

याज्ञिक जन ने पूज भली विधि, और यज्ञ में हनन किया।
ऋषि **वशिष्ठ** को पूजा नृप ने, हर्षित मन सम्मान किया॥

दीक्षित हुए **सुन्दर, धर, प्रखर**, ऋषि को किया प्रणाम।
धारण कर **विंदल**[१६] सुगोत्र को, हुआ अग्र का ऊँचा नाम॥

यज्ञ चौदहवाँ रचा अग्र ने, अतुलित पुण्य कमाया।
सजा यज्ञ का अश्व ललित, द्रुति गति से था धाया॥

यात्रा करके वह अबाध, फिर मंडप में आया।
हुआ यज्ञ में वध उसका भी, धर्मलाभ था पाया॥

मैत्रेय ऋषि थे मुख्य अतिथि, पूजा नृप ने भली प्रकार।
दीक्षित करो युवक वर्ग को, ऋषिवर करो परम उपकार॥

नंद, कुंद, मालीनाथ ने **मित्तल**[१४] गोत्र किया धारण।
अग्र वंश की कीर्ति कौमुदी के, ये तीनों ही थे कारण॥

यज्ञ पन्द्रहवाँ किया नृपति ने, पूर्ण पराक्रम शाली।
नील वर्ण के सुधर अश्व की, ग्रीवा में माला डाली॥

लौटा अश्व विजय पा जग में, पुजा यज्ञ मंडप में।
हुआ हनन था बलि वेदी पर, फैल गया यश जग में॥

नृप ने सादर **तेत्तिरेय** ऋषि का करके पूजन।
अर्घ समर्पित कर श्रद्धामय, किया सुखद अभिनन्दन॥

कुमार बुलाए **कांति, शांति, कुलुम्बुक** मनभाए।
धारण किया **तायल**[१५] सुगोत्र को, मनचाहे फल पाए॥

सम्पादित हुआ यज्ञ सोलहवाँ अति मंगलकारी।
अग्रसेन के राजमहल की शोभा थी अति न्यारी॥

तत्सम रूप—१३. वशिष्ठ १४. मैत्रेय, १५. तेत्तिरेय।

भाग चला हय वायु वेग से, नाप गया पृथ्वी सारी।
कर परिक्रमा पूर्ण शीघ्र ही, लौटा मंडप बलधारी॥

किया स्तवन पुरोहितों ने, हुआ हनन स्वर घोर।
धारण करके दिव्य वपुष को, चला गया नभ मंडल ओर॥

अग्रसेन ने **भारद्वाज** ऋषि को अति सम्माना।
अध्यात्मवाद के गुप्त रहस्य को उनसे जाना॥

कुमार **क्षमाशाली, पय्यमाली, विलासद** यज्ञ भूमि में आए।
दीक्षित हुए गोत्र **भंदल**,[१६] धारण कर हरषाए॥

किया सत्रहवाँ यज्ञ नृपति ने, मन अति उत्साह भरा।
पुण्य कर्म की सतत प्रगति लख, होती मुदित धरा॥

श्याम वर्ण था अश्व अनुपम, नृप ने पुजवाया।
राजमहिषी से सम्मान प्राप्त कर, हय अति हरषाया॥

विजय पताका को कर धारण, भाग चला वसुधा पर।
डोल उठी थी धरती पथ की, उमंग उठे सरिता सर॥

शूरसेन के संचालन में, सैन्य गमन थी करती।
विजय प्राप्त कर शत्रु दलों पर, उनका मर्दन करती॥

लौटा अश्व मुदित मंडप में, जली यज्ञ की ज्वाला।
हनन हुआ था अश्व यज्ञ का, दिखता दृश्य निराला॥

कश्यप ऋषि ने यज्ञ पूर्ण कर, दिया नृपति को आशिरवाद।
सफल मनोरथ होय तुम्हारे, होए जग में जय-जय नाद॥

अग्र नृपति ने मुदित त्रिकुमारों को, दीक्षा हेतु बुलाया।
कुच्छल[१७] गोत्र किया धारण था, सबका हर्ष बढ़ाया॥

अग्र भूप ने ऋषि **नगेन्द्र** का सादर आह्वान किया।
दीक्षित करके शेष तीन को, **नांगल**[१८] गोत्र दिया॥

तत्सम रूप—१६. भारद्वाज १७. कश्यप, १८. नगेन्द्र।

सत्रह यज्ञ हुए पूर्ण थे, बल वैभव नृप ने पाया।
कीर्ति कौमुदी फैली जग में, अतुलित सुयश कमाया॥

कृषि सम्पन्न हुई भूमि थी, सबने महा मोद पाया।
सद्विवेक जागा मानस में. जन-जन था हरषाया॥

गर्ग ऋषि कहते हैं विभु से, यज्ञों का है महत्त्व महान।
लोक और परलोक सुधरता, जन-जन का होता कल्याण॥

यदि चाहो सब सौख्य धरा पर, देव वर्ग को करो प्रसन्न।
करो यज्ञ के शुभ आयोजन, हो ज्ञान ज्योति से प्रफुल्लित मन॥

संतानों के विवाह

अग्रसेन के राज्य सुखद में, शुभ समृद्धि थी छाई।
सभी प्रजा के वर्ग सुखी थे, मुदमय शांति सुहाई॥

राजमहल में नौबत बजती, हर्षित सभी समाज।
अग्रसेन देते सुख सबको, होते पूरण काज॥

होएँ विवाह के आयोजन, पुत्र, पुत्रियाँ वरण करें।
भूप महल में बजे बधाई, राजवंश समृद्धि करे॥

परामर्श था किया नृपति ने, राजगुरु का था सन्देश।
वसुधा के जितने राजवंश है, सम्बन्ध करो दो ध्यान नरेश॥

वैवाहिक संगठन सदा, विश्व मिलन करते हैं।
शत्रु भाव होता विनष्ट है, सदा शांति सुख बढ़ते हैं॥

संस्कृति का विनिमय होता, द्रोह घृणा का होता नाश।
बनता व्यापक दृष्टिकोण है, उद्योग-कला का सतत विकास॥

कन्याओं का आर्य कुलों में, नृप वर करो विवाह।
आर्य संस्कृति की रक्षा हित, कुलाचार का हो निर्वाह॥

कल्याण राज्य का होवे जग में, वैभव बढ़े अपार।
आर्य-नाग वंशों में भूपति, हो विवाह व्यवहार॥

राज शक्ति संतुलन हेतु, नाग वंश को मित्र बनाओ।
ले इनका सहयोग जगत में, नृपवर अपनी शक्ति बढ़ाओ॥

विवाह कर्म में नृप देखो, धर्म-संस्कृति की रक्षा।
भौतिक, लौकिक, आध्यात्मिक, श्रेष्ठ गुणों की सतत परीक्षा॥

विवाह कर्म में अग्रवंश का, हो नूतन आदर्श।
सदाचरण की बढ़े प्रतिष्ठा, हो वर्धित जग में उत्कर्ष॥

ये विवाह आदर्श कर्म हैं, पावन यज्ञ इन्हें मानो।
धार्मिक विधान हैं जगती के, महत्त्व नृपति पहिचानो॥

राजगुरु के मार्ग दर्शन में, अग्रसेन ने ब्याह रचाए।
निज अष्टादश कन्याओं का, कर विवाह वे हरषाए॥

भारत के जो श्रेष्ठ वंश थे, आर्य धर्म के पालक।
अर्पित कन्या कर अग्रसेन, बने पुण्य के आराधक॥

अतुलित धन सम्पति कर प्रदान, नृप ने कन्यादान लिए।
अग्रवंश के कुलाचार के, नियम सभी थे पूर्ण किए॥

पुत्री ब्याह के पुण्य कर्म से, अग्रसेन हुए पुलकित।
पुत्र विवाह के सुखद कार्य हित, था इनका मन हुलसित॥

आर्य वंश के, नागवंश के, अन्य वंश के प्रस्ताव।
आते सदैव थे नृप गृह में, होता वर्धित स्नेह भाव॥

छत्तीस राज-कुमारियाँ, रूपवती, वीरांगना, बालाएँ।
आईं सुखमय अग्रोहा में, पुत्रवधू बन हरषाएँ॥

बजी बधाई थी नृप गृह में, हुई सुखद ज्योनार।
इन्द्रपुरी सी अग्रपुरी थी, होता संतत सुखद बिहार॥

एक दिवस पाताल लोक से आया शुभ सन्देश।
नृपति वासुकी नागवंश के, बलशाली नागेश॥

अष्टादश हैं कन्या इनकी, सब परिणय के योग।
होगा विवाह उसी वंश में, जहाँ पुत्र अठारह का संयोग॥

सुना निवेदन श्री वासुकि का, अग्रसेन संतुष्ट हुए।
शेष अष्टादश सुत विवाह हेतु, अपने मन आकृष्ट हुए॥

अग्रोहा के श्रेष्ठ नृपति ने, शुभ प्रस्ताव किया स्वीकार।
अग्रवंश के युवकों का, नागवंश में हो व्यवहार॥

मंगल मुहुर्त को सुधवाया, श्री वासुकि कृतकृत्य हुए।
अगणित उपहारों को लेकर, अग्रोहा में प्रगट हुए॥

हुआ तिलक कुमारों का, बजी सरस शहनाई।
मंगल गायन हुए मधुर थे, शुभ विवाह की बेला आई॥

सजे अठारह कुँवर सजग, चली बरात सरित मदमाती।
पहुँची नागलोक में जाकर, अपना सस्वर नाद सुनाती॥

श्री वासुकि ने प्रेम भाव से, अति पावन संकल्प लिया।
अष्टादश कुमारियों का, सुखमय कन्यादान किया॥

एक लगन में शुभ मंडप में, नाग नृपति ने रचे विवाह।
सामूहिक विवाह का दृश्य अनुपम, हुआ शिष्टता का निर्वाह॥

विदा हुई थीं नाग सुताएँ; अग्रोहा में किया प्रवेश।
आर्य-नाग मैत्री का सुखमय, दृश्य देखते अतिथि नरेश॥

सुर, नर, मुनि, सत्कार हुआ, आर्य-नाग का सुखद मिलन।
प्रेम-राग का सुख समुद्र, लहराता था सबके मन॥

गूँज उठे मधु स्वर सुख मय, हुआ ललित गायन।
गर्ग ऋषि से विवाह प्रसंग सुन, हुए मुदित विभु अपने मन॥

अद्‌भुत बलिदान

श्री जस्सराज थे चारण विभूतिए, काव्य कर्म करते।
परमधीर, साधक, सुविज्ञ थे, अग्रोहा में रहते॥

अग्रसेन थे मातुल इनके, करते जिनसे प्रीति परम।
आदर, मान, सम्मान, बहुत था, पालन करते थे निज धर्म॥

करते तप थे निज आश्रम में, शिव के श्रेष्ठ उपासक।
होता था कल्याण देश का, त्यागव्रती थे अविचल साधक॥

राजवंश में संकट छाया, अग्र नृपति थे चिंतातुर।
नागवंश की बालाओं का, कर रहा आचरण था कातर॥

बीते वर्ष अनेक विवाह को, हुआ नहीं संतति संयोग।
गृहस्थ धर्म का हुआ न पालन, जान सका न कोई रोग॥

धारण करतीं विचित्र वेश थीं, नाग वंश की बालाएँ।
कर न सकी आसक्त कुमारों को, विरत भाव दर्शाए॥

अग्रसेन को व्यापी चिंता, श्री जस्सराज का ध्यान किया।
हुए उपस्थित साधक वर थे, नृप का दुख था जान लिया॥

किया ध्यान था श्री शंकर का, थे त्रिकालज्ञ जस्सराज।
गूढ़ रहस्य था प्राप्त हो गया, सिद्ध होयगा कैसे काज॥

नागवंश की सुता सुन्दरी, पर रूप भयंकर दिखता।
धारण कर परिधान नाग का, उनको अति सुख मिलता॥

डरते पति लख वेष भयंकर, निकट न जाते इनके पास।
निशिदिन बीते निष्फल थे, हुए कुँवर सब परम निराश॥

श्री जस्सराज ने सोचा मन में, चाहे हो निज बलिदान।
दूर करूँगा कष्ट वंश का, होगा अग्र वंश कल्याण॥

नागलोक में वे जा पहुँचे, किया क्रोध भारी।
पत्थर लगे बरसने भूपर, दृश्य बना भयकारी॥

काँप गये थे नागराज, जस्सराज को शांत किया।
रहस्य बताया नाग वस्त्र का, सादर कवि को विदा किया॥

श्रावण शुक्ल पंचमी आई, नाग पंचमी कहलाती।
पूजन होता नागदेव का, नाग जाति हरषाती॥

अग्रवंशीय नाग-वधुओं ने, अपने चोले लिए उतार।
हो प्रविष्ट सरोवर में, करती क्रीड़ा मुदित विहार॥

जस्सराज जा पहुँचे तट पर, नागवस्त्र थे रखे हुए।
किए एकत्रित सभी वसन थे, मन में कृत संकल्प हुए॥

चिता जलाई दिव्य एक, बैठ गए उसके ऊपर।
भस्म हुए थे जस्सराज जी, नाग सुता के चोले लेकर॥

आलोकित थी ज्वाल चिता की, नाग सुता लख घबड़ाई।
नग्न प्राय थी अति आतुर, सर से बाहर आई॥

नहीं दिखाई दिए वस्त्र, करने लगी दुखद क्रंदन।
हुआ क्रोध अति उनके मन में, कौन ले गया नाग वसन॥

अति व्याकुल सब नाग सुता थी, कैसे अपना बदन छिपाएँ।
किसने किया कर्म निंदित है, क्यों न मरें वे बालाएँ॥

अग्रसेन को ज्ञात हुआ, श्री जस्सराज थे भस्म हुए।
नागसुताओं के चोले ले, अग्नि समर्पित स्वयं हुए॥

अश्रु बरसते थे नयनों से, रुक न सका था रुदन प्रवाह।
धन्य तपस्वी जस्सराज प्रिय, पा न सका था कोई थाह॥

अग्रवंश की रक्षा के हित, अमर रहेगा यह बलिदान।
चारण विभूतियों की पूजा, सदा करेगी अग्र संतान॥

आश्वासन था दिया अग्र ने, सभी नाग बालाओं को।
ग्रहण करो शुभ ग्रहस्थ धर्म को, विस्मृत करो स्वयं दुख को॥

नागवंश की पूजा, अग्र वंश में हो सादर।
नागपंचमी समारोह में, सर्पों की अर्चना निरन्तर॥

दुलहिन की कलगी में अंकित, नागदेव की प्रतिमा हो।
भित्ति चित्र नागों के रचकर, अग्र-वधू का स्तवन हो॥

पूजित होंगे नाग वस्त्र शुभ, अग्र वंश बालाओं में।
धारण करेगी घाट वस्त्र, वे अपने भव्य विवाहों में॥

धारण किए वेश अति सुन्दर, पहिने आभूषण परिधान।
राजमहल में नाग-वधुओं ने, किया प्रवेश पाया सम्मान॥

दम्पति सुख प्रारम्भ हुआ, बढ़ा वंश था गौरववान।
प्राप्त किया संतति सुख सबने, हुआ अग्र वंश कल्याण।।

अग्रवंश करता प्रणाम है, याद रहेगा यह बलिदान।
चारण विभूतिए पूजनीय हैं, करते अग्रसेन का गान।।

गर्ग ऋषि कहते नृप विभु से, सुनो पूर्वजों की गाथा।
बंदनीय चारण समाज है, इनके प्रति झुकता माथा।।

मानव यश शरीर को निश्चय, कवि ही अमर बनाता।
युगों युगों की गाथा गाकर, श्रद्धा भाव जगाता।।

सरस्वती के श्रेष्ठ पुत्र, रचकर काव्य महान।
कल्याण हेतु मानव समाज के, देते निज बलिदान।।

हे यशभागी, उपकारी, श्रेष्ठ सरस्वती साधक।
दो निज आशिरवाद सदा, अग्र वंश के यश गायक।।

अहिंसा की विजय

अग्रसेन थे परम सुखी, पुत्र-पौत्रों का परिवार।
गृह उपवन हुआ पल्लवित, वही प्रेम रसधार।।

जगी भावना कुल गुरु मन में, शेष रहा अष्टादश यज्ञ।
पूर्ण करें नृप इसको सादर, प्राप्त करें यश बनकर विज्ञ।।

संकल्प किया था नृप ने, हो अष्टादश यज्ञ आयोजन।
केवल सत्रह यज्ञ हुए, पूर्ण हुआ नहीं प्रण पालन।।

स्मरण दिलाया कुल गुरु ने, अट्ठारहवाँ यज्ञ करो।
निज संकल्प निभाओ भूपति, पुण्य कर्म सम्पन्न करो।।

राजाज्ञा थी हुई नगर में, हो आयोजित यज्ञ।
पूर्ण प्रतिज्ञा होय नृपति की, कहलाए नहीं अज्ञ।।

सजने लगा नगर अनुपम था, यज्ञभूमि मंडित।
दूर-दूर से अतिथि पधारे, कर्म काण्ड के पंडित।।

मंडप सजा परम मनमोहक, आकर्षक अनूप।
वंदनवार पताकाओं से, सज्जित जिसका रूप।।

भाँति-भाँति के पुष्पहार से, सुरभित था स्थल।
रत्नावलियों से द्युतिमय था, आलोकित झिलमिल।।

अग्रसेन परिवार सहित, उसमें मुदित पधारे।
नागसुता-माधवी समेत, वे, धर्म भाव धारे।।

पुत्र-पुत्रियों, पौत्र-पौत्रियों से शोभित नृपराज।
तारागण से ज्यों शोभित हो, अम्बर में शशिराज।।

हुआ वेद मंत्र उच्चारण, श्री गणेश का गान।
परम ब्रह्म का हुआ स्तवन, देवों का आह्वान।।

यज्ञ ज्योति थी जगी धरा पर, आलोकित स्थल था।
हुआ अश्व का पूजन अनुपम, रोमांचक वह क्षण था।।

शूरसेन ने आगे बढ़ कर, किया अश्व संचालन।
दौड़ पड़ा वह यज्ञ भूमि से, प्रारम्भ हुआ विचरण।।

नगर, ग्राम, वन पार किए, लख जनता हरषाती।
रोक न सका उसे कोई था, गति चंचल मदमाती।।

शूरसेन का बल अथाह था, संचालन था श्रेष्ठ महान।
शरणागत थे हुए नृपति, किया उन्होंने था सम्मान।।

लौटा अश्व मरुत गति से, यज्ञ भूमि में आया।
अभिनन्दन पाया अनुपम था, सबने शीश झुकाया।।

ज्वाला जगी यज्ञ मंडप में, धुआँ उठा भारी।
हवन सामिग्री अति सुरभित थी, मुद्मय मंगलकारी।।

राज गुरु आदेश हुआ, करो अश्व बलिदान।
काँपा हस्त था, खड़ग रुक गई, लख तुरंग छविबान।।

मूक भाव से अश्व खड़ा था, बहने लगी अश्रु की धार।
स्तम्भित दर्शक गण सब ही, हुआ गम्भीर विचार।।

अति विस्मित हो अग्र नृपति ने, लखा अश्व की ओर।
मुरझाया मुख कमल नृपति का, शोक भाव में हुआ विभोर॥

लखी अश्व की दीन दशा थी, करुणा का संचार हुआ।
अन्तर्द्वन्द्व जगा था मन में, भाव अहिंसा उदित हुआ॥

सुनी अश्व की वाणी जो था, करुणामय विनती करता।
प्राणों की रक्षा के हित, निज भाषा में वह कहता॥

"क्या यह धर्म सत्य मानव का, यज्ञों में हिंसा करना।
पाने को वैभव जगती में, प्राणों का नाशक बनना॥

मानव पिता नहीं तुम केवल, जीव मात्र के रक्षक हो।
पालक हो इस अखिल राज्य के, दीन-दुखी के सर्वस हो॥

करो न हिंसा मेरी प्रभुवर, मैंने सेवा रण में की है।
शरणागत में नृपवर पावन, प्राणदान हो यह विनती है"॥

हुए प्रभावित अग्रसेन जी, पशु की करुण गिरा से।
पछताते थे दुखी हृदय से, हिंसा की ज्वाला से॥

करो यज्ञ की रोक तुरत ही, हत्या का क्या इसमें काम।
शूरसेन से कहा नृपति ने, हो विमुक्त यह अश्व 'सुनाम'॥

आज्ञा देकर अग्रसेन जी, यज्ञभूमि से चले गये।
पछताते संतप्त मना हो, क्यों हिंसक वे हाय हुए॥

महलों में थी रात बिताई, तनिक न निद्रा आई।
देख रहे थे स्वप्न भयानक, मन अशांति थी छाई॥

देखें इनने अगणित पशु, बने भयातुर चिल्लाते।
रोते, अश्रु बहाते वे थे, करुण भाव दिखलाते॥

हिंसा का यह रूप नृपति ने, निज आँखों से देखा।
निरपराध प्राणी के वध में, महापाप था पेखा॥

परम दुखी थे अग्रसेन, नयनों से आँसू बहते।
पाप जलधि में डूब रहा हूँ, ऐसा वह मन में गुनते॥

प्रातःकाल हुआ अगले दिन, यज्ञभूमि में भीड़ हुई।
नहीं नृपति को उसने पाया, घटना, अकल्पनीय हुई॥

शूरसेन ने राजभवन में, नृप को महा दुखी पाया।
करने लगे प्रार्थना उनसे, "कैसा मोह प्रभो ! आया॥

अनुष्ठान हो पूर्ण धर्म का, करो शोक का त्याग।
अति विचित्र यह मोह हुआ है, कैसा विषम विराग"॥

बोले नृपवर शूरसेन से, "क्या यह ही है धर्म।
पूर्ण न होगा अब मुझसे, यह हिंसामय कर्म"॥

कहा शूर ने, "हे विवेक निधि, अपना प्रण पहचानो।
वैदिकी हिंसा नहीं अपावन, मत अधर्म प्रभु मानो॥

करो पूर्ण संकल्प तात ! जग में पाओ सुयश महान।
बनो विमुख यदि यज्ञ कर्म से, पाओगे अपमान"॥

कहा शूर से अग्रसेन ने, "क्यों बनते अनजान।
सच्चा धर्म रूप पहिचानो, सभी जीव हैं एक समान॥

क्यों अन्तर करते नर-पशु में, दोनों में बसते भगवान।
दुखी नहीं क्या पशु होता है, जब हम लेते उसके प्राण॥

उदित हुई जब ज्ञान प्रभा है, उसको सादर अपनाओ।
हुआ पाप का बोध हाय ! फिर क्यों करके पछताओ॥

अनजाने में करो पाप तो, प्रभु क्षमा करता है।
जानबूझ कर किया अधर्म, कभी नहीं मिटता है॥

करो घोषणा पूर्ण राज्य में, नहीं जीव हिंसा होगी।
अग्रवंश में अश्वमेध की, पुनरावृति नहीं होगी"॥

कहा शूर ने "महाराजवर ! चलो यज्ञ मंडप में।
करो घोषणा श्री मुख से, जो है प्रभु के मन में"॥

अग्रसेन ने यज्ञभूमि में, सत्वर किया प्रयाण।
ऋषि-मुनि-तांत्रिक बैठे थे, राज्य-राज्य के नृपति महान॥

स्वस्ति वचन से स्वागत नृप का, जनता ने जयकार किया।
बरस उठी नभ से जलधारा, प्रभु ने आशिरवाद दिया।।

कुल गुरु ने आह्वान किया, जली यज्ञ की ज्वाला।
देवों का स्तवन हुआ, मन में हुआ उजाला।।

हुआ यज्ञ का अश्व उपस्थित, हुआ पुनः पूजन।
देवों की महिमा में सादर, हुआ मंत्रों का पावन गुंजन।।

राजपुरोहित ने आज्ञा दी, "करो अश्व का नृप बलिदान।
निज संकल्प पूर्ति के हित, खड्ग उठाओ भूप महान"।।

कहा अग्र ने राजगुरु से, "हे ऋषिवर मतिमान।
मुक्ति न होगी अश्वमेध से, करूँ न क्यों मैं निज बलिदान।।

यज्ञों की हिंसा से क्या अभीष्ट है, महामुक्ति का पाना।
दुख पहुँचाकर निरपराध को, इष्ट नहीं यश पाना।।

करो यज्ञ को यहीं विसर्जित, नहीं जीव हत्या होगी।
अग्र राज्य में अब भविष्य में, नहीं यज्ञ-हिंसा होगी"।।

विस्मित थे सब दर्शक, अतिथि सभी भयभीत हुए।
यज्ञ-रोक की घटना से, सबके मन थे त्रस्त हुए।।

क्या देवकोप की छाया फिर इस धरती पर आएगी।
क्या ऋषि-मुनियों की अप्रसन्नता, जगती तल पर छाएगी।।

कैसे होगा धर्म धरा पर, होगा कैसे जन कल्याण।
क्षात्र-भाव कैसे जागेगा, कैसे होंगे जन बलवान।।

प्रश्नों की थी झड़ी लगी, मचा हुआ मंडप में शोर।
कातर दृष्टि से सभी देखते, श्री अग्रसेन की ओर।।

समझ गये श्री अग्र नृपति थे, मानव मन की चाह।
धर्म भीरुता देखी उनमें, भय, दुख, शोक अथाह।।

हाथ उठा कर कहा नृपति ने, "अतिथिवृन्द मतिमान।
हिंसा से कल्याण न होगा, यह निश्चय पाप महान।।

परोपकार सम पुण्य नहीं है, पर पीड़न सम पाप।
सभी धर्म का एक कथन है, हरो जीव संताप।।

निज भोगों के हेतु सहारा, क्यों लेते यज्ञों का।
अपराधी बन कर हिंसा के, चाहो दया भाव ईश्वर का।।

बीता हिंसा का युग है, पाप पूर्ण अवनति का।
करके निज उत्सर्ग मानव, लाए युग उन्नति का।।

कदम बढ़ रहे नवयुग के, धर्म अहिंसा आएगा।
त्याग, तपस्या, निस्वार्थ भाव से, मनुज मुक्ति पाएगा।।

अग्रोहा की पुण्य भूमि पर, नया धर्म छाएगा।
नव संस्कृति नव भाव उदित हों, एक नया युग आएगा।।

विश्व धर्म की ज्योति, धरा पर आलोकित होगी।
जीव मात्र की रक्षा, विकास हित, नई व्यवस्था होगी।।

आदर्श राज्य बन अग्रोहा, पाएगा निर्मल आलोक।
जीवमात्र उद्धारक होगा, दूर हटेंगे सबके शोक"।।

किया समर्थन था जनता ने, हुई अग्र की जय-जयकार।
हुआ विसर्जित यज्ञ अष्टादश, अमर, अहिंसा धर्म उदार।।

श्री अग्रसेन थे अति प्रसन्न, माना जनता का आभार।
अतुलित दान किया वितरित था, छाया मोद अपार।।

ऋषि-मुनि सब थे विदा हुए, पाकर के सम्मान।
किया गर्ग मुनि ने नृप विभु से, यज्ञों का गुणगान।।

*

चतुर्दश सर्ग : नए समाज का निर्माण

हिंसा की प्रतिक्रिया

यज्ञ अधूरा रहा नृपति का, अर्ध यज्ञ कहलाया।
पूर्ण हुआ नहीं व्रत नरेश का, अद्‌भुत विधि की माया॥

विप्र वृन्द था क्षुब्ध बहुत, यज्ञ कर्म का लख अपमान।
हुआ धर्म से च्युत नृप है, पा न सकेगा अब सम्मान॥

रुष्ट हुए थे देव स्वर्ग के, यज्ञभाग नहीं पाया।
क्षुधित तृषित थे पितृ सभी, मिला पिंड नहीं मनभाया॥

अनुभव करता आचार्य वर्ग "विचलित नृपति हुआ है।
दया वृत्ति से प्रेरित होकर, कर्तव्य भाव से विरत हुआ है"॥

सुर-मुनि, याज्ञिक, नृपति धरा के, एक मंच पर आए।
करने लगे विचार सभी मिल, "कैसे धर्म बचाएं॥

क्षत्रिय का तो धर्म यही है, धर्म हेतु करना बलिदान।
विश्व मात्र की रक्षा के हित, करना अपना जीवन दान॥

यज्ञ विमुख द्विज जगती में, कैसे करें धर्म का पालन।
संग्राम विमुख होए यदि क्षत्रिय, कैसे होगा शत्रु नशावन॥

धर्म विरोधी जो पापी हैं, दस्यु, वधिक, अत्याचारी।
यदि दंडित हों नहीं धरा पर, त्रस्त होगी जनता सारी॥

शस्त्र और शास्त्र का पालन, जनहित में है आवश्यक।
करो न अवज्ञा कभी मोह में, रहो धर्म के अनुपालक॥

अनेक यज्ञ हैं हुए धरा पर, ऐसा नहीं हुआ रसभंग।
श्री रामचन्द्र ने अश्वमेध में, क्या न बधा था यज्ञ तुरंग॥

कुरुक्षेत्र की युद्ध भूमि में, अर्जुन को था मोह हुआ।
गीता का उपदेश श्रवण कर, कर्तव्य कर्म अनुरक्त हुआ॥

आत्मा की पुकार को सुनना, मानव का कर्त्तव्य महान।
पर इससे भी बढ़कर जग में, पालन करना धर्म-विधान॥

आरोप यही है अग्रसेन पर, यज्ञ कर्म का किया उल्लघंन।
निज विचार से हो प्रेरित, किया नहीं धर्म का पालन॥

स्पष्ट करे नृप निज वाणी से, कैसे वे हैं निरपराध।
क्यों न प्रायश्चित्त करें स्वयं, स्वीकार करे यदि वे अपराध"॥

हुआ विवाद धार्मिक जनों में, क्या अग्रसेन है अपराधी।
सत्य धर्म है कौन धरा पर, जिसने यह पृथ्वी साधी॥

स्पष्ट किया था अग्र नृपति ने, सुन करके आरोप।
"निश्चित ही यदि मैं दोषी हूँ, नहीं करूँगा प्रत्यारोप॥

पाप और पुण्य युगल हैं, सदा धर्म के रूप।
पर-पीड़ा सम पाप नहीं है, रक्षा धर्म स्वरूप॥

कर्म कोई हो इस जगती का, पाप पुण्य दोनों हैं।
रक्षा में है पुण्य समाया, हत्या में अपराध निहित है॥

युद्ध कर्म में धर्म सत्य ही, यदि यह रक्षक मानव का।
करता विनाश है पापी का, नाशक दुष्ट जनों का॥

यज्ञ-हिंसा निश्चय पातक है, जो पशु-हत्या करती।
धर्म शास्त्र का आलम्बन ले, प्राणी का सुख हरती॥

एक धर्म है रूढ़ि समर्थक, स्वार्थ भाव सिखलाता।
परम धर्म है प्राणी रक्षा, आतम-बोध कराता॥

यज्ञों से क्यों हो विरोध, यदि वे जीवन रक्षक बनते।
'जियो और जीने दो' शिक्षा को, मानव मन में भरते॥

यज्ञों का वह रूप त्याज्य है, जिसमें हिंसा कर्म अज्ञान।
प्रेरित होकर इसी भाव से, मैंने रोका, यह अनुष्ठान"॥

कहा कुलगुरु ने "वत्स सुनो, करते तुम स्वतन्त्र चिंतन।
धर्म शास्त्र के यज्ञ-विधान का, किया नहीं अनुपालन।।

घृणा भाव है यदि हिंसा से, यज्ञ कर्म क्यों अपनाया।
यदि प्रारम्भ किया था तुमने, क्यों न पूर्ण कर पाया।।

कार्य बीच में त्यागन करना, अस्थिरता द्योतक है।
निर्णय ग्रहण हो आचार्यों का, जो विवेक सम्मत है"।।

किया निवेदन अग्रसेन ने "शिरोधार्य आदेश महान।
निश्चय पालन होगा गुरुवर ! चाहें उत्सर्ग करूँ मैं प्राण"।।

निर्णय दिया आचार्य वृन्द ने, सबको मत यह भाए।
"क्षात्र धर्म को त्याग अग्र नृप, वैश्य धर्म अपनाए।।

कर न सकेंगे अब भविष्य में, क्षत्रिय वर्ण से सम्बन्ध।
स्वयं करे निज समाज निर्मित, बने रहे स्वच्छन्द।।

यज्ञों की रक्षा के हित, यह निर्णय हम देते हैं।
संदिग्ध रहे इनका चरित्र, निश्चय यह करते हैं"।।

स्तब्ध हुआ सारा समाज था, चहुँदिशि छाई शांति।
नृप ने निर्णय स्वीकार किया, हुई उन्हें न क्लान्ति।।

अपमान नहीं समझा निर्णय, इसको शुभ माना।
नए वंश के, नए समाज के, स्थापन का व्रत ठाना।।

मानव समाज कल्याण हेतु, श्री अग्रसेन ने त्याग किया।
धर्म-अहिंसा के पालन हित, अपना सब कुछ लुटा दिया।।

गर्ग ऋषि ने वृत्त सुनाया, नृपति विभु सुनते थे।
पितृ देव की गाथाओं को, सहज भाव से गुनते थे।।

महापुरुष वही है जग में, नया मार्ग अपनाए।
कष्ट सहन करता वसुधा में, नहीं विरोध से घबड़ाए।।

इसी भाव से प्रेरित होकर, अग्रसेन ने त्याग किया।
नया वंश स्थापित कर, नव समाज निर्माण किया।।

उद्‌बोधन

ग्रहण किया श्री अग्रसेन ने, आचार्यों का निर्णय सादर।
प्रायश्चित किया नृप ने था, अपूर्ण यज्ञ का सत्वर।।

राजमहल था विकल, नहीं सह सकता अपमान।
रानी व्यथित हुई थीं मन में, हुआ अपराध महान।।

पुत्र-पुत्रियाँ अग्र-नृपति की, करती थीं सम्वाद।
क्या यज्ञों में हिंसा सम्मत, उत्पन्न हुआ विवाद।।

प्रजा नहीं कुछ सोच सकी, कौन पुण्य क्या पाप।
शूरसेन भी व्यथित हुए थे, प्रबल बढ़ा परिताप।।

एक दिवस श्री अग्रसेन ने, अग्रोहा में सभा बुलाई।
सभी नागरिक हुए सम्मिलित, जिज्ञासा मन में छाई।।

कहा नृपति ने, "अग्रवंश की कीर्ति कौमुदी सुखदाई।
आचार्य निर्णय से सभी सोचते, क्या यह सचमुच मुरझाई।।

सूर्य गगन में सदा चमकता, हरता तिमिर महान।
कभी ग्रहण से छिप जाता है, बन जाता अति म्लान।।

कालान्तर में ग्रहण मुक्त हो, देता वह आलोक।
आई विपदा टल जाती, मिटता अन्धकार का शोक।।

अष्टादश यज्ञों की घटना, युग परिवर्तन कारी।
उज्ज्वल भविष्य छिपा गर्भ में, जन-जन की हितकारी।।

हत्या कर भोले पशुओं की, मन अब भी पछताता।
यज्ञ-बलि की कातरता लख, मन अब भी भर जाता।।

हुई अवज्ञा धर्मशास्त्र की, प्राणी की रक्षा में।
'अस्थिर मन' का मैं दोषी हूँ, पर सफल 'जीव रक्षा' में।।

क्रांति सदा चौंकाने वाली, आतंकित होता है मानव।
कालान्तर में यह परिवर्तन, लाता सुख अभिनव।।

अतः यज्ञ-विरोध को सब, साहसिक कौशल मानो।
शमन होयगी हिंसा इससे, पावन अनुष्ठान जानो।।

आचार्य प्रवर का निर्णय मानो, सभी सर्व सुख पाओ।
क्षात्रधर्म को त्याग सर्व-जन, वैश्य धर्म अपनाओ।।

सेना के बल पर ही क्षत्रिय, विजय धरा करता है।
दमनशील बन संग्रह करता, स्वयं कोष भरता है।।

किन्तु वैश्य का मार्ग भिन्न है, अहिंसा-आधार।
शासन करता जन-मन पर है, स्नेहपूर्ण व्यवहार।।

कृषी कर्म से धान्य उगाता, करता है व्यापार।
गोवर्धन से पशु रक्षक बन, बहाता अमल दुग्ध की धार।।

त्याग करो कटु युद्ध वृत्ति का, प्रेम भाव अपनाओ।
बंधुत्व भाव से मन जीतो, सबको गले लगाओ।।

हिंसा मार्ग त्याग कर सब जन, दया भाव दरसाओ।
यज्ञ-कर्म को छोड़ जगत में, भक्ति मार्ग अपनाओ।।

नहीं करेगा मेरे कुल में, कोई प्राणी मांसाहार।
नहीं पिएगा कोई मदिरा, बुद्धि-नशावन हार।।

वैश्य धर्म को अपना करके, सर्व देश में छाओ।
गोत्र अठारह धारण करके, निज परिवार बसाओ।।

आग्रेय प्रजा मेरी सब है. आत्मजवत् संतान।
सभी अग्रजन बंधु-बहिन हैं, हो इनका कल्याण।।

करो संगठन सब मिल करके, मानो अनुशासन।
राष्ट्र-धर्म की वेदी पर, करो निछावर तन, मन, धन।।

एक ईंट-रुपये का व्रत लो, हो समाज बलवान।
हरित क्रान्ति धरती पर लाओ, भारत बने महान।।

नव समाज की अभिनव रचना, एक नया युग लाएँ।
स्नेह, संगठन, समता के बल, हम सब विकास पाएँ।।

करो धर्म का पालन निशिदिन, और भक्ति ईश्वर की।
मानव सेवा करो हृदय से, रक्षा हो जन-जन की।।

करो हवन मन के पापों का, त्याग वृत्ति अपनाओ।
दान करो सब मुक्त भाव से, दीन-दुखी को गले लगाओ।।

यज्ञ करो अब अन्न धान्य से, चंदन, अगर जलाओ।
स्मरण करो श्री विष्णु देव का, स्वास्थ्य लाभ पाओ।।

मधुर प्रसाद समर्पित हो, करो नारियल भेंट।
आशिरवाद प्रभु का पाओ, देवे विपदा भेंट।।

निर्माण करो ऐसे समाज का, अक्षय कोष भरे।
अग्रवंश गौरवमय हो, विश्वम्भर कल्याण करे"।।

सभी सभा ने एक स्वर से, नव समाज का किया समर्थन।
अग्रसेन जयघोष किया, हुआ पूर्ण व्रत पालन।।

एक ज्योति अवतरित हुई, अग्रोहा में छाई।
एक नवल शुभक्रांति सजग हो, अग्रवंश में आई।।

वैश्य समाज हुआ संवर्धित, पाया गौरव मान।
भरत भूमि के शुभ्र पटल पर, छाई ज्योति महान।।

अंकित हुआ सुखद चित्र, थे अग्रसेन मूर्तिमान।
प्रेरणा दे रहे वे सबको, जन-जन के प्रिय प्राण।।

पुलकित हुए नृपति विभु थे, सुन कर पावन गाथा।
गर्ग ऋषि के चरण कमल में, झुका हुआ था माथा।।

विभु का राज्याभिषेक

वर्ष एक सौ आठ बीत गये, कलि का प्रथम चरण।
शासन करते अग्रसेन थे, जन-जन का संरक्षण।।

एक रात्रि को सपने में, नृप ने महालक्ष्मि को देखा।
माँ कमला का दर्शन करके, पढ़ी भाग्य-रेखा।।

थके हुए से अग्र नृपति, माँ को पड़े दिखाई।
चिन्तातुर से लगते वे थे, जीवन वाड़ी मुरझाई॥

कहा लक्ष्मि ने "अग्रसेन सुत, करो राज्य का त्याग।
करो तपस्या मुक्ति हेतु, ग्रहण करो वैराग॥

कुमार विभु को राज्य सौंप कर, वन में जाओ।
परम ब्रह्म की करो तपस्या, जग में सुयश कमाओ"॥

अन्तर्धान हुई माता थी, विस्मित अग्रसेन मतिमान।
सोच रहे थे मन में अपने, क्या यह स्वप्न महान्॥

करते स्मरण मात-पिता का, स्वर्ग लोक जो चले गये।
याद कर रहे उन वर्षों की, स्वप्न सदृश जो बीत गये॥

अगले दिन नृप ने बुलवाया, अपने कुल गुरु को।
भक्तिभाव से करी वंदना, पूजे चरण कमल को॥

आशिरवाद लिया गुरु से था, "जीवन हो मंगलकारी।
सुयश बढ़े नित प्रति जगती में, सफल कामना भूप तुम्हारी"॥

किया निवेदन था नृप ने, "चाहूँ लेना मैं बनवास।
जीवन की अन्तिम वेला में, करूँ ग्रहण आश्रम संन्यास॥

सिंहासन मैं सौंप विभु को, दक्षिण दिशि में करूँ प्रयाण।
पंच गोदावरी क्षेत्र सुपावन, ब्रह्म सर है तीर्थ महान॥

करूँ तपस्या परम ब्रह्म की, प्रभु का निशिदिन गान।
प्रायश्चित करूँ दोषों का, पाऊँ मुक्ति महान"॥

कहा गुरु ने "शुभ विचार है, आशिरवाद हमारा।
सफल करो अपने जीवन को, शुभ संकल्प तुम्हारा"॥

सादर किया विदा निज गुरु को, सुवन विभु बुलवाया।
स्नेह किया अति सहज भाव से, अपना प्यार लुटाया॥

कहा नृपति ने, "ज्येष्ठ पुत्र हो, तेजस्वी गुणवान।
उपयुक्त समय आ पहुँचा है, ग्रहण करो शासन मतिमान॥

सभी बंधु अनुयायी हैं, करते तुमसे निश्चल प्रेम।
पाओगे सहयोग सदा ही, निशिदिन होगा क्षेम"॥

चौंक गये कुमार विभु, स्पर्श किए थे चरण कमल।
"युग-युग तक करो राज्य पितु, पाओ कीर्ति विमल॥

संरक्षण हो सदा तुम्हारा, अग्रवंश का हो उत्थान।
सौभाग्य हमारा यही पितृ है, पाए प्रतिदिन आशीष दान"॥

रोमांच हुआ था नृपवर को, सुत को गले लगाया।
अश्रु बरसने लगे नयन से, निज सर्वस्व लुटाया॥

आदेश दिया अमात्य को नृप ने, "विभु का हो अभिषेक।
करो व्यवस्था महोत्सव की, ईश्वर रक्खे टेक"॥

छाया आनंद अग्र राज्य में, हुआ ईश वंदन।
मंगलमय सब साज सजे, हुआ विभु अभिनंदन॥

शुभ मुहुर्त में अग्रसेन ने, निज सिंहासन किया प्रदान।
आशीष दिया विभु को पावन, "जग में बढ़े तुम्हारा मान"॥

राज गुरु ने तिलक किया, हुआ मुकुट धारण।
अग्रवंश की कीर्ति बढ़ी, सबका पुलक उठा आनन॥

किया मार्ग दर्शन शुभ गुरु ने, विभु ने राजदण्ड अपनाया।
जन-सेवा व्रत लिया मुदित हो, सबको शीश नवाया॥

वैशाख मास पूर्णिमा को, विभु अभिषेक हुआ।
पुण्यमयी पावन वेला में, अग्रवंश उत्कर्ष हुआ॥

मना महोत्सव अग्रोहा में, मंगलमय थे साज सजे।
पूर्ण नगर में बजी बधाई, मुदमय शुभ थे वाद्य बजे॥

उदित हुआ था बालरवि, कर रहा प्रसारित शुभ आलोक।
पूर्ण हुई थी सबकी आशा, दूर हुआ जन-जन का शोक॥

हुआ प्रारम्भ सुशासन विभु का, जय लक्ष्मी थी मुसकाई।
सुख, समृद्धि, सम्मान वृद्धि से, अग्रवंश में आभा आई॥

समाजवादी परम्परा का, विभु ने किया प्रचार।
सहयोग भावना का जगती में, हुआ सतत प्रसार॥

आर्थिक संकट आने पर, व्यापारी नहीं बिगड़ पाता।
पंचलक्ष मुद्रा प्राप्त कर, उद्योग सँभल फिर जाता॥

नोते की प्रथा निराली, विभु ने सुखद चलाई।
भ्रातृ-भाव की स्नेह बेलि, हुई वर्धित सुखदाई॥

ऐसा उत्तम शासन, विभु ने सफल चलाया।
लोकतंत्र की नीति निराली, नृप ने गौरव पाया॥

श्री अग्रसेन थे अति प्रसन्न, देते आशिरवाद।
अग्र वंश के गौरव का नित, होता जय-जयनाद॥

गर्ग ऋषी हो अति प्रसन्न, पावन कथा सुनाते।
सुनते सप्रेम थे विभु नृपति, मुदित भाव से भर जाते॥

अग्रकथा का अमृत पीते, नित बढ़ता उत्साह।
निज संस्कृति से परिचित होते, उद्दीपित थी चाह॥

कहते ऋषिवर नृपति विभु से, सुनो पूर्वजों का इतिहास।
मानस में विवेक जागेगा, होगा पावन विमल विकास॥

*

पन्द्रहवाँ सर्ग : अवसान

अग्रोहा से विदाई

श्री अग्रसेन ने एक दिवस, अग्रोहा से किया प्रयाण।
हुए विदा थे निज परिजन से, करते प्रभु गुणगान॥

कातर नगर दिखाई देता, राजमहल में थी हलचल।
पुरवासी सब अश्रु पूर्ण थे, सबका मन था हुआ विकल॥

हुए शून्य थे महल नगर के, पूर्ण उदासी छाई।
ग्रहण किया नहीं अन्न किसी ने, उतर वेदना आई॥

अग्रसेन के सभी प्रजाजन, व्यथित विषाद भरे।
करते प्रणाम वे भक्ति पूर्ण, नयनों से थे अश्रु झरे॥

किया दान नृप ने दीनों को, अन्न, वस्त्र बँटवाए।
बन्दीगण थे मुक्त किए, देवालय पुजवाए॥

वंदन करके जगदीश्वर का, दे जनता को बोध।
प्रेम भाव दर्शाया सबसे, हुआ गिरा अवरोध॥

"विदा करो पुरवासी जन, बाल, बृद्ध, प्रिय, मान्य।
पशु, पक्षी, तरु, उपवन पुर के, कृषक उगाते धान्य॥

चला जा रहा अग्रसेन है, प्रियजन नहीं भुलाना।
सदा याद रखना मन में, दुःख नहीं तुम पाना॥

क्षमा करो अपने नृप को, प्रेम भाव दर्शाना।
मन में याद उठे तब सकरुण, अश्रु मुक्त बिखराना"॥

पुर से बाहर निकले नृप थे, पाया जन जन से सम्मान।
अग्रोहा के वासी निशि दिन, करते अग्र-नृपति गुणगान॥

राज्य छोड़कर अग्रसेन, करते प्रयाण थे दक्षिण ओर।
पार कर रहे खेत, कूप, सरित, शैल, वन घोर।।

साक्षात धर्म था गमन कर रहा, कण कण मुदित हुआ।
अग्रसेन की कर अगवानी, जल, थल, नभ था धन्य हुआ।।

बढ़े जा रहे अग्रसेन थे, कदम बढ़ रहे आगे।
दर्शन करते थे वनवासी, जो द्रुति गति से भागे।।

लख करके वे धन्य हुए, करते सप्रेम प्रणाम।
जीवन धन्य हुआ लख भूपति, करो तनिक विश्राम।।

कन्द, मूल, फल भेंट सप्रेम, सहर्ष वे प्रस्तुत करते।
अन्न, धान्य के पदार्थ, पावन अर्पित करते।।

अग्रोहा से दूर गए, हरयाणा था पार किया।
राजस्थानी सुखद धरा में, मुदित प्रवेश किया।।

किया तनिक विश्राम नृपति ने, आगे कदम बढ़ाए।
नाग-सुता, माधवि साथ, सभी ने हरि गुण गाए।।

किया पार गुजरात, महाराष्ट्र में पहुँचे जाकर।
गोदावरि तट पहुँच अग्र, रुके थे सात्विक सत्वर।।

पंच गोदावरि तीर्थ, सिद्ध थल अति पावन।
ठहर गए नृप निज दल युत कर प्रभु बंदन।।

ब्रह्म सरोवर स्थल अति मुदमय, पावन, सुखकारी।
सुखद आश्रम बना भूप का, हुई व्यवस्था सारी।।

आए ऋषि-मुनि दक्षिण भू के, आशिरवाद दिया।
शुभ मुहुर्त में अग्रसेन ने, तप प्रारम्भ किया।।

ग्रीष्म ऋतु में तपते थे नृप, अग्नि प्रखर में।
सहन करते मेह प्रखर को, पावस ऋतु में।।

शीतकाल में सर प्रवेश कर, तप थे करते।
गला रहे वे निज शरीर को, राम नाम जपते।।

गुजरे निशि-वासर अनेक, कई मास थे बीत गए।
अन्न, नीर को छोड़ नृपति, ईश्वर में थे लीन हुए।।

"धन्य धन्य हे नृपवर पावन! अमर रहेगा नाम।
याद करेंगे त्याग, तपस्या, शत-शत तुम्हें प्रणाम"।।

गर्ग ऋषि ने विह्वल मन से, विभु को पावन कथा सुनाई।
धन्य वही मानव जगती में, जिसने प्रभु चरणों में गति पाई।।

स्वर्गारोहण

वर्ष एकादश बीत गए, अग्रसेन तप करते।
समाधिस्थ वह हो जाते, राम नाम जपते।।

सोहम्-शिवम् स्वर निकल रहे, उनके मुख से।
अंतरिक्ष में गूँज रहे थे, शब्द निकल आनन से।।

ब्रह्म सरोवर तीर्थ स्थल में, पुण्य पर्व छाया।
ऋषि मुनियों का समूह था, धर्म लाभ हित आया।।

समाचार पा विभु नृपति भी, तपस्थली में आए।
पुरजन, परिजन सभी प्रजाजन, दर्शन हित लाए।।

शूरसेन ने मिलन हेतु, तपोभूमि में किया प्रवेश।
करते बंदन अग्रसेन का, जयति तात अग्रेश।।

आया अगहन मास सुहाना, तिथि एकादशि पावन।
शुक्ल पक्ष था दीप्तिमान, भव भय ताप नशावन।।

ब्राह्म मुहूर्त का समय सुहाना, सर्वत्र शांति थी छाई।
श्री अग्रसेन को बोध हो गया, महा प्रयाण की बेला आई।।

नेत्र खोल कर सबको देखा, बोल रहे वे महिमा धाम।
"सुखी रहो सब मेरे बालक, जीवन हो अभिराम।।

विस्मृत करना सभी दोष को, अवगुण चित्त न लाना।
परोपकार करना जीवन में, प्राणिमात्र को अपनाना।।

भारत देश हमारा पावन, आदर्शों की खान।
भेदभाव को त्याग हृदय से, सभी धर्म हैं एक समान।।

कहाँ से आया है यह मानव, और कहाँ जाएगा।
कब से जन्मा यह धरती पर, कब विमुक्त हो पाएगा।।

प्रश्न अनेक विषम हैं जग के, नहीं सुलझ पाए हैं।
जीवन-मृत्यु अनादि अनन्त हैं, भू पर सुख दुख छाए हैं।।

करो न चिंता इसकी प्रियवर, यह संसार सराय नहीं।
कर्म भूमि है यह मानव की, कर्तव्यों की धरा यही।।

मानव जीवन परम श्रेष्ठ है, महामुक्ति का द्वार।
इसे संभालो, इसे बनाओ, यही धर्म का सार।।

परम ब्रह्म की करो साधना, सब सेवा व्रत पालो।
कल्याण करो इस जगती का, अपना भाग्य संभालो।।

जयति जयति हे भारत माता, जय जय जय भारत वासी।
परम ब्रह्म है जहाँ जनमते, करते लीला सुखराशी।।

फूले फले अग्र वंश सदा, पावन गौरव अमर रहे।
निज समाज अरु राष्ट्र धर्म की, रक्षा में नर सुदृढ़ रहे।।

अग्रसेन करता प्रणाम है, करो विदा भारत वासी।
प्रभु चरणों में लीन हो रहा, जयति ब्रह्म गुण राशी।।

विकसित हो मानव समाज, बने यशस्वी अरु सुखधाम।
आशीर्वाद प्रभु का पाए, ग्रहण करो अंतिम प्रणाम"।।

देखा सबने श्री अग्रसेन, राम नाम थे जपते।
अधर हिल रहे धीरे धीरे, अति कठोर वे तप करते।।

आया अंतिम समय अग्र का, अंतरिक्ष में शब्द हुआ।
सुरभित हुई सब वनस्थली, चहुँदिशि अति आलोक हुआ।।

तेज पुंज पावन प्रकाश था, निकल रहा तन से बाहर।
कर रहा चमत्कृत सब समाज को, गूँजा अम्बर, उमड़ा सागर।।

अवतरित हुआ था जो प्रकाश, दो शताब्दि द्युतिमान हुआ।
लुप्त हुआ वह हाय जगत में, खोज सकेंगे उसे कहाँ।।

देवि माधवी, नाग सुता भी, पति चरणों में लीन हुईं।
सभी शक्तियाँ अग्रसेन की, स्वर्ग मार्ग की पथिक हुईं।।

पुष्पों की वर्षा होती थी, बहती त्रिविध बयार।
स्वागत होता अग्रसेन का, खुले स्वर्ग के द्वार।।

भारत गौरव, प्रातः स्मरणीय, श्री अग्रसेन पहुँचे हरिधाम।
प्रभु चरणों में लीन हो गए, पाया शुभ शाश्वत विश्राम।।

अश्रु झर रहे थे नयनों से, अग्र सुवन थे विकल हुए।
पौत्र-प्रपौत्र क्रन्दन करते, सभी वेदना पूर्ण हुए।।

पार्थिव शरीर श्री अग्रसेन का, रखा हुआ भू पर।
देता सन्देश यही जगती को, 'ईश्वर अजर अमर'।।

उपदेश दिया ऋषि मुनियों ने, सबको शोक विमुक्त किया।
अंत्येष्टि क्रिया का सजा साज, सबने निर्जल व्रत ग्रहण किया।।

सरित गोदावरि के तट पर, श्री अग्रसेन की चिता बनी।
स्वर्गधाम की यात्रा हित, अति विचित्र सोपान बनी।।

वेद मंत्र थे ध्वनित हुए, गूँज रहा श्री हरि का नाम।
नृपति विभु ने चिता जलाई, किया पिता को दण्ड प्रणाम।।

सभी धर्म वृत्तियाँ साथ ले, अग्रसेन पहुँचे सुर धाम।
अमर हुई उनकी गाथा है, पावन पिता तुम्हारा नाम।।

श्रद्धांजलि मानव समाज की, पितृेश्वर स्वीकार करो।
देकर अपना शुभाशीष, मानव का कल्याण करो।।

सदा हृदय में याद रखेंगे, भारत माँ के पुत्र ललाम।
स्मरण करेंगे आदर्शों को, जयति जयति जय सुखधाम।।

श्री गर्ग ऋषि ने पावन गाथा, विभु को सकल सुनाई।
अश्रु बिन्दु झर रहे नयन से, विह्वल गिरा सुहाई।।

हृदय भर उठा नृपति विभू का, याद पिता की आई।
उमड़ उठी करुणा मानस की, निकल नयन से आई॥

प्राप्त किया संतोष अन्त में, पाई शान्ति महान।
अमर रहे अग्र की गाथा, धन्य अग्र संतान॥

था विह्वल सारा समाज, चहुँदिशि वेदना छाई।
गंगा सी पावन अग्र कथा, गर्ग ऋषि ने गाई॥

"यह शरीर ही अग्रोहा है, अग्रसेन है इसकी आत्मा।
माधवि श्रद्धा, इड़ा नागसुता, सर्वोपरि परमात्मा॥

श्री लक्ष्मी है इष्ट देवि, सब भारत माता जानों।
करो उपासना शुद्ध हृदय से, जन मन को पहचानो॥

शूरसेन है अनुयायी, श्री नारद पथ दर्शक।
मानव विवेक ही राजगुरु है, जीव विभु का रक्षक॥

अष्टादश गण अग्रसेन के, सूर्य किरण छविमान्।
देते प्रकाश हैं जगती को, शुचि संदेश महान॥

एक ईंट रुपये की गाथा, सुना रहे सविवेक।
समता समाज में लाएँ 'अग्रजन', ईश्वर सबका एक॥

श्रद्धाञ्जलि

श्री विभु सपरिवार बैठे थे, ब्रह्म सरोवर तट पर।
करते दश गात्र कर्म अग्र का, श्रद्धा सुमन समर्पित कर॥

कर्मकाण्ड के आचार्य प्रवर, करते मार्ग प्रदर्शन।
सभी शास्त्र को शोध विभू, सम्पन्न कर रहे पूजन॥

भरा गया घट शुचि जल से, पीपल तरु के नीचे।
श्री विष्णुचरण का वंदन होता, मिटते पाप समूचे॥

दिवस तीसरे अग्रसेन की, भस्म-अस्थि एकत्र हुईं।
भरी गईं वे स्वर्ण कलश में, पुष्पहार से लसित हुईं॥

श्री गोदावरि के जल में, हुआ पावन भस्म प्रवाहण।
आयावर्त की सरिताओं में, हुआ अस्थि विसर्जन॥

गरुड़ पुराण की कथा सुनाते, तेजस्वी आचार्य प्रवर।
प्राणी की गति समझाते, अग्र वंश सुनता सादर॥

कैसे जाता जीव स्वर्ग में, देवलोक में पाता मान।
पापी जीव यातना सहता, दुःख भोगता वन अज्ञान॥

त्याग, तपस्या, प्रायश्चित से, कैसे भव बाधा मिटती।
दान-धर्म के बल पर कैसे, प्राणी को मुक्ति मिलती॥

एकादश का पूजन विभु ने, सहज भाव से पूर्ण किया।
मुक्ति मिले स्वर्गीय पिता को, पावन प्रभुवर नाम लिया॥

शुद्ध हुआ कुल अनुष्ठान कर, आया द्वादश दिवस पुनीत।
मंडप विशाल बना सरिता तट, सम्पन्न हुई कुल रीत॥

एकत्र हुए थे ऋषि, मुनि, याचक, विप्रवृन्द, आचार्य।
दिवंगत आत्माओं की शान्ति हेतु, हुआ हवन शुभ कार्य॥

जन समाज बैठा धरती पर, करता अग्रसेन की याद।
उपदेश कर रहे थे ऋषि-मुनि, सुलझाते जन्म-मरण के बाद॥

स्वर्गीय भूप की स्मृति में, पूर्ण हुआ था विप्र-भोज।
तृप्त हुए थे भूखे प्राणी, मिटी क्षुधा मुख खिले सरोज॥

बीते पन्द्रह दिवस मृत्यु के, करते अग्रसेन की याद।
श्रद्धांजलि सब अर्पित करते, उमड़ उठा था करुण विषाद॥

प्रस्थान किया तपोभूमि से, बढ़े कदम अग्रोहा ओर।
खोकर के सर्वस्व अग्र कुल, चला जा रहा शोक विभोर॥

बीच-बीच में ग्राम पार किए, नगर, बस्तियाँ, जनपद।
वन, उद्यान, सरित, घाटियाँ, शैल शिखर, निरापद॥

शोक ग्रस्त यात्रिक समाज को, देते सांत्वना जनवृन्द।
होता था गुणगान अग्र का, भावपूर्ण, पावन, स्वच्छन्द॥

दर्शक समूह आगे बढ़ता, नत मस्तक दिखता था।
अपने पूज्यनीय पूर्वज की, याद सभक्ति करता था।।

पत्र पुष्प की भेंट चढ़ाता, अर्पित करता भाव सुमन।
करता पूजन अग्र-चित्र का, होता था शुभ वंदन।।

पद यात्रा थी नृपति विभु की, पूर्ण हुई दिन एक।
पहुँच गया था जन समूह, अग्रोहा सह कष्ट अनेक।।

शोक प्रदर्शन करने प्रजा, एकत्र हुई थी भारी।
अग्रसेन दिवस मनाया सबने, शोकाकुल नर नारी।।

श्रद्धांजलि अर्पित कर जनता, गुणानुवाद गाती।
अष्टादस बस्ती में, याद अग्र की आती।।

हुआ मास था पूर्ण निधन को, श्राद्ध कर्म सम्पन्न हुआ।
धार्मिक कृत्य किए सब विभु ने, अतिथि वृन्द सन्तुष्ट हुआ।।

पुण्य स्थल एक चुना गया, प्रारम्भ हुआ पावन अभियान।
अग्रसेन की स्मृति में विभु ने, किया हरि मंदिर निर्माण।।

विष्णु, लक्ष्मी, शिव-गौरी की, भव्य मूर्तियाँ शोभित।
श्री गणेश, दुर्गा, मारुति की स्थापना, करती जन मोहित।।

एक वर्ष था बीत गया, पुण्य-तिथि अग्र की आई।
मार्गशीर्ष के शुक्ल पक्ष की, एकादशी सुहाई।।

हुआ भव्य आयोजन पावन, अग्रोहा एकत्र हुआ।
श्रद्धांजलि अर्पित करता था, मानव समाज कृतार्थ हुआ।।

नृपति विभु ने जन हित में, अतुलित धन-भू-दान किया।
धर्म, लोक, शिक्षा, स्वास्थ्य हित, अक्षय निधि को जन्म दिया।।

संचालित करते नृप विभु थे, अक्षय निधि वर्धित होती।
दीन-दुखी का होता कल्याण, शिक्षा ज्योति प्रसारित होती।।

यदि कोई संकट में पड़ता, पाता था वह जन सहयोग।
प्रति जन एक ईंट-रुपये से, मिटता उसका आर्थिक रोग।।

नहीं कुँवारी कोई कन्या, अग्र-राज्य में रहती।
होता विवाह उसका सुखमय, पति सेवा सादर करती।।

युवक नहीं रहता कोई अशिक्षित, अथवा कर्महीन निस्सहाय।
पाता था सहयोग राज्य से, मिलता उसको था व्यवसाय।।

अनिवार्य चिकित्सा होती सबकी, पाते सब रहने को धाम।
कोई भूखा-नंगा नहीं रहा, सबके होते पूरण काम।।

यही व्यवस्था अग्र-राज्य की, कल्याणमयी सुखराशी।
सभी व्यक्ति थे कर्मनिष्ठ, सत्यव्रती, गुण राशी।।

नहीं त्रिताप थे अग्रोहा में, चहुदिशि मंगल छाया।
संस्कृति, समाज की होती उन्नति, था राम राज्य आया।।

करते स्मरण अग्रसेन का, मुदमय भारतवासी।
प्रतिवर्ष मनाते अग्र जयंती, प्रेरणा पूर्ण गुण राशी।।

हुआ संगठित देश अखिल, बंधुत्व भाव था जागा।
समता, सहयोग, समृद्धि प्राप्त कर, दारिद्रय् तिमिर भागा।।

हे जन नायक, आदर्श मूर्ति, भारत माँ के श्रेष्ठ सुवन।
श्रद्धांजलि अर्पित करता है, भारत का प्रति जन।।

याद करेगा विश्व विभूति, कर्त्तव्यनिष्ठ गुण धाम।
कृतार्थ हुई भारत वसुंधरा, अमर रहेगा नाम।।

*

षोडश सर्ग : भविष्य दर्शन

भविष्य दर्शन

सुना चुके थे गर्ग ऋषी, पावन अग्र कथा को।
अति हर्षित थे विभु मन में, सुन पूर्वज गाथा को।।

कहा गर्ग ने "अति प्रसन्न हूँ, कहकर पावन अग्र चरित्र।
राष्ट्र धर्म का उन्नायक है, वर्णन अद्‌भुत परम विचित्र।।

सदा याद रखो मन में, पूर्वज गाथा अतुलित धन है।
लुप्त न करना अपने चित्त से, अग्र-वंश गौरवमय है।।

देता आशीर्वाद वत्स, "हो शतायु, तुम श्रेष्ठ महान्।
पालन करो धर्म अपना, पाओ जीवन में सम्मान।।

नहीं पराजित होगा कोई, अग्र पताका लहराए।
दिग्-दिगंत को मुदित करे, यश सौरभ बिखराए।।

हाथ सदा रखना ऊँचा, किन्तु नयन नीचे हों।
दान करो लक्ष मुद्राएँ, जब कोई बंधु दरिद्र हो।।

ऊँचा सदा उठाओ कुल को, आदर्शों का पालन हो।
निज संस्कृति समाज के हित, अर्पित तव जीवन हो"।।

अति प्रसन्न थे विभु मन में, तन में था रोमांच हुआ।
आभार प्रदर्शित किया ऋषि का, जीवन सार्थक सफल हुआ।।

कहा नृपति ने "धन्य श्रेष्ठ मुनि, गाथा परम सुहाई।
पूर्वज के गौरव-प्रकाश की, आभा नवल जगाई।।

त्रिकालज्ञ तुम ज्ञान शिरोमणि, हो इतिहास प्रकाशक।
जिज्ञासा यह शेष रही, भावी वृत्त कहो मुनि नायक।।

यज्ञ अष्टादस रहा अधूरा, अग्रसेन को क्लेश हुआ।
संदिग्ध रहे अस्तित्व अग्र का, ऋषियों का था शाप हुआ।।

कैसे गाथा अमर रहे, अरु अग्र-चरित्र सब जाने।
करो व्यवस्था मुनिवर पावन, पूर्वज महत्व सब माने।।

कब तक शासन अग्र-वंश का, पृथ्वी पर निर्विघ्न रहेगा।
होंगे कौन यशस्वी नृप, कहाँ विदित वर्णन होगा।।

भावी वृत्त सुनना चाहूँ मैं, प्रभुवर मुझ पर कृपा करो।
करो प्रकाशित इतिहास ज्योति को, जिज्ञासा मुनि शांत करो"।।

कहा गर्ग ने "अति प्रसन्न हूँ, सुन करके मैं प्रश्न तुम्हारा।
भविष्य पुराण के 'लक्ष्मी महात्म्य' में होगा वर्णन सारा।।

'अग्र वैश्य वंशानुकीर्तनम्' प्रसंग परम सुखदाई।
जीवन गाथा अग्रसेन की, रचना परम सुहाई।।

लुप्त होएगा अर्ध भाग, नहीं ढूँढ़ सकोगे तुम पुराण में।
नष्ट होएगा यह प्रमाण भी, पा न सकोगे किसी ग्रन्थ में।।

जो जन सहृदय कथा सुनेगा, शुभ दीपावलि उत्सव में।
सफल होएँगे काम सभी, पाएगा सुख जीवन में।।

करो उपासना श्री लक्ष्मी की, विष्णु प्रिया जग जननी की।
श्रेष्ठ बनेगा जीवन पावन, करे पूर्ण कामना जन-मन की।।

[1][सुनो भविष्य गाथा अब तुम, "अतीत वृत्त तुम जान सके।
वर्तमान है बीत रहा, निज कर्त्तव्य तुम पाल सके।।

होकर शतायु, तुम धर्म लाभ कर, ब्रह्म लीन हो जाओगे।
होगी रानी सती तुम्हारी, परम मुक्ति तुम पाओगे।।

---

१. देखिए—अग्र-वैश्य वंशानुकीर्तनम्—श्लोक १५६ से १६३ तक;
डा० सत्यकेतु विद्यालंकार का अग्रवाल जाति का प्राचीन इतिहास (द्वितीय संस्करण) पृष्ठ १९१-१९३।

'नेमरथ' सुत गुणशील तुम्हारा, अग्रोहा में राज्य करेगा।
होगा शासक सफल धरा में, मर्यादा सब पाल सकेगा।।

विमल, शुकदेव, धनंजय होंगे, भावी नृपति महान।
अग्र वंश की उज्ज्वल प्रतिभा, आलोकित होगी छविवान।।

होंगे श्री नाथ इसी वंश में, वैष्णव जन सुखदायी।
पुत्र दिवाकर जन्मेगा, जैन धर्म अनुयायी।।

श्री लोहाचार्य से होगा दीक्षित, पर्वत शिखर पर जाएगा।
जैनधर्म का पालन करके, शान्ति अमित पाएगा।।

कर्म-काण्ड का होगा ह्रास, जैन ज्योति आलोकित होगी।
धर्म अहिंसा फैलेगा, क्षात्र शक्ति की अवनति होगी।।

होगा नृपति सुदर्शन भविष्य में, राज सिंहासन त्याग करेगा।
निज पुत्रों को दे सिंहासन, वाराणसि में व्रत लेगा।।

लेकर के संन्यास अन्त में, स्वर्गलोक को गमन करेगा।
इसके पीछे महादेव, यमाधार, शुभांग, मलय शासन होगा।।

वसु के होंगे अनेक पुत्र और आठ शाखाएँ।
राज्य करेंगे कई राज में, दूर करेंगे बाधाएँ।।

मलय कवि के बन्दी सुत, पौत्र चन्द्रशेखर होगा।
ग्रहण करेगा जो वैराग्य, प्रभु चरणों में ध्यान करेगा।।

अग्रचन्द होगा अन्तिम नृप, कलियुग में शासन होगा।
पुत्र, पौत्र अरु वंशज से युत, गौरवमय बलशाली होगा।।

अग्रवंश की विमल कथा यह, अति पौराणिक पावन।
भारतीय इतिहास का गौरव, जन अज्ञान नशावन।।

गाथा अग्र नृपति की यशमय, गौरवमय यह वंश महान।
भरत-देश इतिहास स्वर्ण युग, करते चारण हैं यश ज्ञान।।

ढाई हजार वर्ष होंगे पूरे, कलियुग में सद्धर्म घटेगा।
क्षात्र वर्ग की अवनति होगी, धर्म अहिंसा जाग्रत होगा।।

होंगे श्री महावीर तीर्थंकर, गौतम बुद्ध महान।
धर्म अहिंसा फैलाएँगे, पाएँगे जन त्राण।।

अग्रवंश प्रभावित होकर, धर्म अहिंसा पालेगा।
अग्रोहा की सुखद धरा पर, एक नया युग आएगा।।

पश्चिम दिशि में यूनान राज्य, अतिशय गौरववान।
श्रेष्ठ सिकन्दर राज्य करेगा, महावीर बलवान।।

विजय प्राप्त कर पारस में, वह आगमन करेगा पूरब ओर।
नष्ट भ्रष्ट कर राज्य अमित, वह आएगा भारत ओर।।

पंचनद प्रदेश में नृपति पोरस का, होगा राज्य महान।
भारत जन सहयोग प्राप्त कर, फैलाएगा कीर्ति सुजान।।

तक्षशिला को जीत सिकन्दर, जब भारत में करे प्रवेश।
लड़े युद्ध वह पोरस नृप से, करे विजय पंचनद-देश।।

बढ़ न सके यूनानी आगे, महानंद का सुन वर्णन।
लौटेंगे वे जब स्वदेश को, होगा आग्रेय शौर्य प्रदर्शन।।

गाथा गौरव मय भारत की, देखो वीर जनों का त्याग।
सती नारियों का पतिव्रत, राष्ट्र-धर्म-पालन अनुराग"।।

नृपति विभु ने लखा क्षितिज में, पश्चिम दिशि की ओर।
"चित्र एक उभरा अम्बर में, होता था रण घोर।।

यूनानी सेनाएँ लड़ती, अग्र वंश के वीरों से।
करती प्रहार हैं वेग पूर्ण, पर हरा न सकी तलवारों से।।

आग्रेय वीर जनों ने आगे बढ़, किया आक्रमण घोर।
पीछे हटने लगे यवन, भागे पश्चिम ओर।।

कूटनीति से अलक्षेन्द्र ने, युद्ध स्थल में काम किया।
गोकुलचन्द देश द्रोही को, निज दल में था मिला लिया।।

खुल गये फाटक अग्रोहा के, यवन सैन्य ने किया प्रवेश।
रणचण्डी थी नर्तन करती, धारण किए भयंकर वेश।।

आग्नेय वीरों ने किया प्रदर्शन रणचण्डी आह्वान हुआ।
उत्सर्ग किया निज प्राणों का, अग्र-शौर्य्य चरितार्थ हुआ।।

सर्वनाश जब लखा राज्य का, अग्र-वंश बालाओं ने।
जौहर का आयोजन करके, दिए प्राण ललनाओं ने।।

लपटें उठी अग्नि की बर्बर, धधक उठी थी चिता विशाल।
कूद-कूद कर सुन्दरियाँ, प्रस्तुत करतीं दृश्य कराल।।

अग्र-वंश की बालाओं ने, भीष्म प्रतिज्ञा थी ठानी।
नहीं पतित होंगी वे अरि से, नहीं चलेगी मनमानी।।

सती हुईं वे वीर नारियाँ, आर्य धर्म परिपूर्ण हुआ।
अग्र-पतन के साथ-साथ ही, महाभयंकर अन्त हुआ।।

सर्वनाश प्रगटा जगती में, और प्रबल संहार हुआ।
हिन्द देश की ललनाओं का, ऐसा विकट विनाश हुआ।।

आगे बढ़े अग्र के सुत थे, करते महा विकट थे मार।
शत्रु पक्ष से लड़ कर जिन ने, दिखलाया निज शौर्य्य अपार।।

बहु संख्यक अरि दल की सेना, युद्ध भयंकर हुआ महान।
भारत-भू के रणवीरों ने, किया श्रेष्ठ आत्म बलिदान"।।

लखा चित्र यह नृप विभु ने, अपने मन वे काँप गये।
देख भविष्य वे अग्र जाति का, सब सुधि-बुधि थे भूल गये।।

हुआ दृश्य ओझल नयनों से, ज्यों निद्रा से जाग गये।
चरण कमल हुए निज गुरु के, अपने मन कृतार्थ हुए।।

भूत, वर्तमान, भविष्य काल, नृपति विभु ने जाने।
गर्ग ऋषि के प्रसाद से, निज वंश चरित पहचाने।।

सुनी कथा थी नृपति विभु ने, था अतुलित सुख पाया।
अग्रवंश के गौरव का यों, ऋषि ने अमर गान गाया।।

"जयति जयति हे ऋषिवर पावन, जयति जयति गुरुदेव।
पावन अग्र-चरित्र सुनाया, करूँ चरण कमल की सेव।।

प्रभु चरणों में शीश नवाता, पाऊँ आशिरवाद।
अजर अमर हो अग्रवंश, अग्रसेन का हो जयनाद"।।

हुई विसर्जित राजसभा, गर्ग ऋषी भी विदा हुए।
पाया था सम्मान अमित, अग्र-कथा गा मुदित हुए।।

दिया अमोघ आशीष विभु को, "यश-गौरव-सुख पाओ।
अग्रसेन के आदर्शों को, कर चरितार्थ बढ़ाओ।।

भारत जननी की सेवा में, अपना सब कुछ त्याग करो।
करो संगठित निज समाज को, अग्रोहा उत्थान करो"।।

हुए प्रफुल्लित नृपति विभु, करते अग्रसेन का ध्यान।
पितृदेव का स्मरण करते, पाते सुख औ' मोद महान।।

ध्यानमग्न थे नृपति विभु, लखते दृश्य अनूप।
'अग्रोहा को श्रेष्ठ धरा पर, प्रगटा अग्र-स्वरूप।।

मंदिर एक विशाल बना, होता अग्रसेन अर्चन।
लक्ष-लक्ष भारत की जनता, करती अग्र-नृपति दर्शन।।

माँ लक्ष्मी शुभ प्रगट हुई, देती सुखमय आशिरवाद।
शक्ति सरोवर उमड़ रहा है, करता अग्र वंश जयनाद।।

शरद पूर्णिमा आलोकित है, सुखद चाँदनी छाई।
अग्र-कथा अमृत बरसाती, मंगलमय बेला आई।।

आया कुंभ पर्व अति पावन, जन-जन पाप नशावन।
हरता व्यथा हृदय की सारी, महा मोद मय मन भावन'।।

चमक रहा रवि अग्रसेन यश, देता अमित प्रकाश।
जय भारत की, जय अग्रोहा, पूर्ण करे जन-जन की आश।।

लेती है विश्राम यहीं अग्र-कथा, झुकता 'अग्र-जन' माथा।
पूर्ण प्रसारित हो जगती में, अग्रसेन की गौरव गाथा।।

*

आत्म-निवेदन

परम ब्रह्म का वंदन करता, चरण कमल का ध्यान।
अग्र-कथा सम्पूर्ण हुई, श्री अग्रसेन यश गान।।

गणनायक वर बुद्धि विधाता, सकल गुणों के स्वामी।
हुए प्रसन्न सानुकूल, जिनका त्रिलोक अनुगामी।।

हंस वाहिनी मातु शारदा, वंदन करता बारम्बार।
काव्य शक्ति वर प्रदान कर, किया अमित उपकार।।

जय जगदम्बे, जय श्री लक्ष्मी, बल, धन, वैभव स्वामिन्।
हृदय कोष को भरा भाव से, जय त्रय लोक विहारिन।।

अग्रसेन की गाथा गा कर, पूर्ण हुआ संकल्प।
पार कर सका बाधाओं को, हुआ कष्ट नहीं अल्प।।

जीवन वृत्त श्री अग्रसेन का, ग्रहण किया इतिहासों में।
भाव, शक्ति, कल्पना प्राप्त की, अध्ययन कर काव्यों में।।

अग्र-कथा वर्णन करती है, अग्रसेन की पावन गाथा।
त्याग, तपस्या, धैर्य्य, साधना, झुकता जन-जन का माथा।।

वन्दनीय हैं चारणवर, 'जस्सराज' जिनके पूर्वज।
गाते गौरव अग्रसेन का, बनते रक्षक निज शरीर तज।।

अग्रोहा का पत्थर-पत्थर, कहता अग्र कहानी है।
'शीला सती', 'लक्खी बंजारा', गाथा परम पुरानी है।।

वंदन करता 'भारतेन्दु' का, प्रगट किया अग्र-इतिहास।
खोज अतीत की गर्भ गुहा से, किया अग्र-चरित्र प्रकाश।।

'महालक्ष्मी व्रत-कथा' अनुपम, 'अग्र-वैश्य वंशानुकीर्तनम्'।
करते प्रगटित अग्र-कथा को, काव्य-ग्रन्थ 'उरु चरितम्'।।

ये दोनों हैं स्रोत कथा के, भारतवासी जानो।
श्री अग्रसेन की जीवन गाथा, आदर्श रूप पहिचानो।।

अति पौराणिक अग्रसेन हैं, पूर्व-ऐतिहासिक काल।
अग्रोहा के संस्थापक, जिनसे होता ऊँचा भाल।।

[1]'अग्रवाल उत्पत्ति पुस्तिका', वर्णन करती अग्र-चरित्र।
परिचय देती अग्रसेन का, जीवन जिनका परम पवित्र।।

साधुवाद के पात्र सभी कवि, लेखक और प्रकाशक।
विविध भाँति की रचना करके, बने अग्र-चरित के सर्जक।।

हरियाणा की पावन भू में, अग्रोहा के उद्धारक।
जनपद हिसार के श्रेष्ठ निवासी, सत्य सनातन आराधक।।

नमन करूँ, करता स्मरण, 'श्री ब्रह्मानन्द ब्रह्मचारी'।
अग्र-जयंति ज्योति जगाई, जागी जनता सारी।।

किया उद्बोधन अग्र समाज का, पावन अग्र चरित्र सुनाया।
'श्री विष्णु अग्रवंश पुराण' लिख, सब अज्ञान भगाया।।

हुआ जागरण अग्र समाज में, प्रगटे 'जमनालाल बजाज'।
'वीर लाजपत' जनमें जिसमें, प्राण दिए रख माँ की लाज।।

'अखिल भारतीय अग्रवाल महासभा', किया श्रेष्ठ व्रत पालन।
संकल्प लिया समाज सेवा का, किया कुरीति निवारण।।

'अखिल भारतीय वैश्य महासभा', करती कर्म सुपावन।
उत्तर भारत में समाज सुधार का, हुआ सफल आराधन।।

अग्रवाल समुदाय विकास हित, आवश्यक था प्रबल संगठन।
अग्रोहा-विकास पावन व्रत ले, प्रगट हुआ 'सम्मेलन'[2]।।

---

१. अग्रवालों की उत्पत्ति, २. अखिल भारतीय अग्रवाल सम्मेलन।

कई शतक संस्थाएँ जिसकी, हुईं संगठन-बद्ध।
अग्रसेन की कीर्ति ध्वजा को, फहराती करबद्ध॥

किया प्रमाणित अग्र रूप को, एक ध्वजा अरु एक निशान।
अग्रोहा के पुण्य तीर्थ में, किया आयोजित कुम्भ महान्॥

'अखिल भारतीय अग्रवाल महासंघ', प्रगट हुआ दिल्ली में।
करता कल्याण अग्र जनता का, देता साथ विपति में॥

ये चारों स्तम्भ भवन के, जिसमें समाज बसता है।
भरत-राष्ट्र में वैश्य समाज, आज अग्रसर होता है॥

वैश्य शिरोमणि श्री अग्रसेन को, श्रद्धाञ्जलि प्रदान करो।
भारत देश बने समुन्नत, 'भामाशाह' को याद करो॥

'राष्ट्रपिता बापू' को हम, आदर्श मान कर कर्म करें।
कर्मवीर 'घनश्याम दास' का, आद्योगिक अनुसरण करें॥

तो देश हमारा ऊँचा होगा, राम-राज्य आएगा।
सच्चा समाजवाद फैलेगा, प्रति जन सुख पाएगा॥

सम्भव होगा यह तभी जब, श्री अग्रसेन का वृत जानो।
अपनाओ निज जीवन में, इनकी शिक्षाएँ मानो॥

इसी ध्येय को मन में रख कर, अग्र-कथा का सृजन किया।
अध्ययन कर अग्र साहित्य का, काव्यामृत को प्राप्त किया॥

'श्री सत्यकेतु विद्यालंकार' का, सादर करता प्रगट आभार।
'अग्र जाति प्राचीन इतिहास'[1] लिख, किया परम उपकार॥

अग्र-कथा का वृत्त लिया है, श्री सत्यकेतु की रचना से।
केवल काव्य रूप दिया है, कवि ने निज प्रतिभा से॥

आधार अग्र-कथा रचना का, जातीय इतिहास का यह दर्शन।
अध्ययन करो गहन इसका ही, यह मम नम्र निवेदन॥

१. अग्रवाल जाति का प्राचीन इतिहास।

अग्रवाल-विकास जानो, 'परमेश्वरीलाल'[1] की रचना से।
होता सिद्ध अग्रसेन अस्तित्व नहीं, पुरातत्व की खोजों से॥

अग्रवाल जन स्वयं प्रमाणित, करते अग्रसेन-अस्तित्व।
अग्रोहा का दुर्ग अगम, करता प्रमाणित है यह तत्त्व॥

'अग्रोतकान्वय' श्री गौतमकृत, अग्रवाल वैश्य जाति इतिहास।
परिचय देता नाग वंश, गोत्रों का, संस्थाओं का विशद विकास॥

आभार प्रदर्शन 'स्वराज्य मणि' का, महिलाओं में अग्र महान्।
'अग्रसेन, अग्रोहा, अग्रवाल' रच, पाया गौरव मान्॥

विविध विषय प्रस्तुत करतीं जो, अपनी श्रेष्ठ कला से।
अग्रसेन अस्तित्त्व सिद्ध करतीं, स्वयं प्रखर प्रतिभा से॥

'श्री त्रिलोक' के नाटक अनुपम, 'अग्रोहा की कहानी'।
'अग्र-काव्य' प्रस्तुत करता है, अग्र-कवी-गण वाणी॥

वंदन करता श्री 'वाल्मीकि', 'व्यास देव', 'कालिदास' का।
भारत ऋणी रहेगा, जिनकी प्रबंध-काव्य-नाट्य कला का॥

करता नमन 'श्री तुलसिदास' को. 'रामचरित मानस' के कर्ता।
आदर्श राम का किया निरूपित, त्रिविधि ताप के जो हर्ता॥

'मैथिली शरण' का स्मरण करता, 'जय शंकर' का लेता नाम।
'साकेत', 'कामायनी' रचना कर, बने युगल यशधाम॥

आदर्श 'राम' का सम्मुख रख, 'अग्रसेन' का किया बखान।
'श्रद्धा-माधवी', 'इड़ा-नागसुता', करती मानव का कल्याण॥

'माधवी विरह' लिया साकेत से, बनी 'उर्मिला' की अवतार।
'शूरसेन' ने 'लक्ष्मण' बन, लिया सदा शुचि सेवा भार॥

'छः ऋतु बारह मास' अनोखा, प्रसंग करुण रस पूर्ण।
ग्रहण किया 'पद्मावत्' से, रचना 'मलिक मोहम्मद'[2] मधुपूर्ण॥

१. अग्रवाल जाति का विकास, २. मलिक मोहम्मद जायसी।

जैसे सागर में सरिताएँ, कल-कल करती करें प्रवेश।
वैसे ही कवि का उर बनता, विविध भाव का शुभ्र निवेश॥

सूर्य ताप से जैसे जल है, बादल बन मेह बरसाता।
वैसे ही कवि हृदय तप्त हो, भाव-जलधि बन जाता॥

मानव केवल यंत्र मात्र है, माध्यम है जगती में।
कहता कौन, कहाता कौन है, कवि जान न सका जीवन में॥

जब सोता है जग निद्रा में. कवि का भाव उमड़ता।
अकस्मात् ही काव्य निर्झर, हृदय स्त्रोत से बह उठता॥

चार वर्ष की यही साधना, अग्र-कथा में पहिचानो।
विचरण करता स्वप्न लोक में, कवि कथा-वृत्त हित जानो॥

कई प्रसंग ऐसे रचना में, कल्पना शक्ति से सृजित हुए।
काव्य भावना से प्रेरित हो, कवि-रचना में व्यक्त हुए॥

इतिहास पहेली अग्रसेन की, अभी नहीं सुलझी है।
यह प्रयास है इसी दिशा में, अभी कथा उलझी है॥

होगा भविष्य में महाकवि, अग्रसेन गाथा गाएगा।
महाकाव्य का सृजन करेगा, यश-गौरव पाएगा॥

हे प्रभु मुझे लघु दीप बनाओ, निज कुटिया में जला करूँ।
जब तक सूर्य प्रकाश न हो, मानव उर आलोक करूँ॥

वंदन करता निज मात-पिता का, जिनने मुझको जन्म दिया।
'श्री मोतीलाल' पितु, माता 'लक्ष्मी', प्रभु सेवा संकल्प लिया॥

जन्मभूमि है नगर 'ग्वालियर', वीर मराठों की रजधानी।
हुआ उत्सर्ग इसी भूमि में, जय झाँसी की लक्ष्मी रानी॥

'अग्र साहित्य केन्द्र' मम साधना-स्थल, करता चिन्तन हूँ।
निज साहित्य, समाज, धर्म का, मन से करता सेवन हूँ॥

लेता हूँ विश्राम, साधना अग्र-कथा लिख पूर्ण हुई है।
यही आत्म-निवेदन मेरा, क्षमा करो यदि भूल हुई है॥

सहृदय पाठक सदा हंस सम, मान सरोवर में रहता।
दोष-नीर को त्याग, उदार वन, क्षीर गुणों को गहता॥

खोजी पाठक डूब समुद्र में, लाता मोती चुन है।
अलंकार को सुललित करता, देता यश गौरव है॥

पर आलोचक स्वर्णकार बन, अग्नि परीक्षा लेता है।
तपा स्वर्ण को, कलुष नशा कर, तभी प्रमाणित करता है॥

आलोचक को सहृदय जन, उस माली सम जानो।
कर्तन कर पादप गुलाब का, सुषमा वर्धक मानो॥

परम हितैषी आलोचक है, जन, साहित्य, कला का।
निज प्रतिभा से दोष दिखाता, कलुष नशाता कवि का॥

दोनों ही स्वीकार मुझे हैं, अपनाओ या ठुकराओ।
याद सदा रखना प्रियवर, कभी न हृदय से विसराओ॥

अग्रवाल जन जलधि महा है, मुझे बूँद सम जानो।
प्रियवर बंधु तुम्हारा हूँ मैं, इसी भाव से मानो॥

लेती है विश्राम लेखनी, लिख कर धन्य हुई है।
अग्र-कथा की रचना करके, आत्मा तृप्त हुई है॥

ब्रह्म-सहोदर काव्यामृत है, सादर पान करो।
अग्रसेन की जय हो जग में, सब मिल नमन करो॥

इति शुभम्

जीवन-वृत

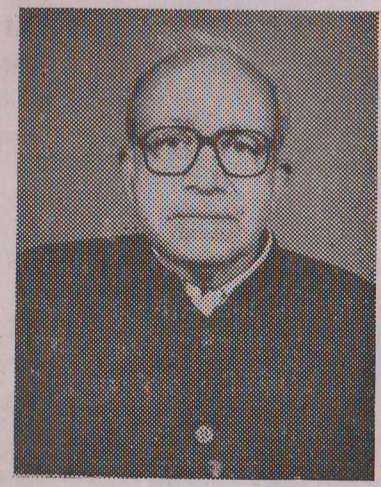

चिरंजीलाल अग्रवाल

जन्म—अग्रवाल (गर्ग गोत्र) परिवार में लश्कर (ग्वालियर) नगर में २० जून १९१३ ई० को हुआ। श्री मोतीलाल जी इनके पिता तथा श्रीमती लक्ष्मीबाई माता थीं।

शिक्षा—लश्कर में प्रारम्भ हुई। विक्टोरिया कॉलेज ग्वालियर से सन् १९३६ ई० में बी० ए० परीक्षा उत्तीर्ण की। श्री सनातन धर्म कॉलेज कानपुर में तीन वर्ष अध्ययन कर एम० ए० (हिन्दी) तथा एल-एल० बी० परीक्षाएँ उत्तीर्ण कीं। विद्यार्थी जीवन सफल और प्रशंसनीय रहा।

शासकीय सेवा—सन् १९४१ में ग्वालियर राज्य में प्रारम्भ की। सन् १९४८ में पूर्व मध्य भारत राज्य में विधि-अनुवादक बने। सन् १९५२ में संघ लोक सेवा आयोग के द्वारा चुने जाने पर नई दिल्ली में स्थित केन्द्रीय सरकार के विधि मंत्रालय में अनुवादक नियुक्त हुए। सन् १९६२ में राजभाषा (विधायी) आयोग में अधीक्षक नियुक्त हुए, वहीं सन् १९६१ में सहायक प्रारूपकार पद पर उन्नत हुए तथा सन् १९७१ में पदेन अवर-सचिव के रूप में सेवा-

निवृत्त हुए। अपने शासकीय काल में ये एक सुयोग्य, कर्त्तव्यनिष्ठ एवं लोकप्रिय राजपत्रित अधिकारी रहे।

सार्वजनिक गतिविधि—शिक्षाकाल के उपरांत इन्होंने धार्मिक, सामाजिक एवं साहित्यिक क्षेत्रों में ग्वालियर नगर में अपनी प्रतिभा का परिचय दिया। इन्होंने वर्ष १९३८ में अग्रवाल नवयुवक संघ लश्कर की स्थापना में अपना महत्वपूर्ण सहयोग दिया और ये दो वर्ष तक इस संस्था के मंत्री रहे। ये श्री सनातन धर्म मण्डल, लश्कर एवं हिन्दी साहित्य सभा, लश्कर की कार्यकारिणी के सदस्य एवं सक्रिय कार्यकर्त्ता रहे। एक लेखक, कवि, वक्ता एवं कर्मठ कार्यकर्त्ता के रूप में ये ग्वालियर नगर में प्रख्यात और लोकप्रिय रहे।

भारत सरकार की शासकीय सेवा में सन् १९५२ में नई दिल्ली आने पर भी इनकी रुचि साहित्यिक, सामाजिक और धार्मिक गतिविधियों की ओर रही। सन् १९७१ में सेवा निवृत्ति के पश्चात् इन्होंने अपना जीवन सार्वजनिक सेवा में अर्पित कर दिया। सन् १९७३ में इन्होंने अग्रवाल परिषद् रामकृष्णपुरम् की स्थापना में अपना सक्रिय योगदान दिया। ये इस संस्था के वर्ष १९७७-७८ में प्रधान तथा वर्ष १९७९-८० में मंत्री भी रहे। सन् १९७८ में इन्होंने इसी क्षेत्र में अग्र-साहित्य का प्रचार-प्रसार करने की दृष्टि से अग्र-साहित्य केन्द्र की स्थापना की। ये ६ वर्ष तक इसके संचालक रहे और अब इसके संस्थापक अध्यक्ष हैं। अग्रवाल परिषद् के प्रतिनिधि सदस्य के रूप में अप्रैल सन् १९७५ में धर्म भवन नई दिल्ली में आयोजित अखिल भारतीय अग्रवाल प्रतिनिधि सम्मेलन में इन्होंने अपना महत्वपूर्ण योगदान किया। अखिल भारतीय अग्रवाल सम्मेलन तथा अग्रोहा-विकास-ट्रस्ट के विधानों के मूल रूप तैयार करने तथा इन्हें वैधानिक रूप देने में इन्होंने अपना सहयोग दिया। ये मानस मण्डल, साउथ मोती बाग नई दिल्ली के कई वर्ष तक प्रधान रहे तथा मानस परिषद् और सरस्वती पीठ रामकृष्णपुरम् के द्वारा आयोजित कार्यक्रमों में इन्होंने अपना सहयोग दिया।

कृतित्व—इनकी रचनाएँ समय-समय पर मंगल मिलन नई दिल्ली, अग्रोहातीर्थ दिल्ली, अग्र-बंधु आगरा, अग्र-जीवन जयपुर तथा भारत की अनेक अग्रवाल पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रही हैं। अग्रवाल परिषद् रामकृष्णपुरम् द्वारा आयोजित अग्रसेन जयंती पर प्रकाशित स्मारिकाओं का इन्होंने कई वर्षों तक सफल सम्पादन किया। आपका अग्र साहित्य का विशेष अध्ययन है और इसके प्रचार-प्रसार में गहन रुचि है। इनकी समाज-सम्बन्धी तथा

रचनात्मक विशिष्ट सेवाओं के उपलक्ष में अग्रवाल परिषद् रामकृष्णपुरम् ने इन्हें इस वर्ष अपना संरक्षक मनोनीत किया।

अग्रकथा प्रबंधकाव्य आपकी चार वर्षों की अथक साधना का फल है। २०० पृष्ठों की इस प्रबंध-काव्य रचना में महाराजा अग्रसेन जी के सम्पूर्ण जीवन पर आधारित एक आदर्श पुरुष का सर्वांगीण चित्रण हुआ है।

इस समय अग्रवाल जी की आयु ७५ वर्ष की है फिर भी ये अपने समाज, धर्म एवं साहित्य के प्रति सजग हैं। आप स्वभाव से विनम्र, स्पष्ट-वक्ता, लोकप्रिय और आदर्शों पर आस्थाशील व्यक्ति हैं। इनका परिवार भरापूरा, समृद्ध और सुयोग्य है।

अन्य रचनाएँ (प्रकाशनीय)

काव्य-कुसुम—सौ के लगभग राष्ट्रीय, धार्मिक, साहित्यिक कविताओं का संकलन, रचनाकाल १९३२ ई० से अब तक।

झलक (पद्यानुवाद)—अंग्रेजी साहित्य के महाकवि शेक्सपियर, वर्ड्सवर्थ, शैले, टेनीसन आदि २० कवियों की पचास कविताओं का भावपूर्ण हिन्दी पद्यानुवाद।

अग्रज्योति (नाटक संग्रह)—महाराजा अग्रसेन, प्राचीन अग्र नृपतियों तथा अग्रोहा का उत्सर्ग और सती शिरोमणि शीलादेवी पर आधारित तीन गद्य-पद्यमय मंचनयोग्य रूपकों तथा दहेज विषय पर दो परिचर्चाओं का संग्रह।

शुद्धि पत्र

यथाशक्ति प्रयास किये जाने पर भी कतिपय उल्लेखनीय भूलें रह गई हैं, उदार पाठक इस शुद्धि पत्र के अनुसार मूलपाठ में इन्हें ठीक करके पढ़ने का कष्ट करें। असुविधा के लिए लेखक खेद प्रकट करता है।

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२०	१५	अशात	अशांत
२४	२३	रोब	रोष
४३	२२	पाँ	पाऊँ
४६	१७	मुक्तागण	मुक्ताकण
६०	१	कुलगु	कुलगुरु
१०४	१५	प्रियजनों	प्रियजन
१३१	२४	ोता	ढ़ोता
१५०	५	अग्नि	अनिल
१५०	१७	वामा	पामा
१५२	१५	शुभ	कर
१५२	२३	अनल	अनिल
१५२	२३	सुंदर	शुभ
१५३	६	विदंल[१६]	विदंल[१३]
१५३	१३	मालीनाथ	मल्लिनाथ
१५६	१३	लिए	दिए
१७१	८	भेंट	मेट
१७१	११	पितृेश्वर	पित्रेश्वर
१६१	१	अग्र-वश्य	अग्र-वैश्य
१६१	१५	ावन	पावन
१६२	१२	आद्योगिक	औद्योगिक

महाराजा अग्रसेन के व्यक्तित्व, कर्तृत्व और चरित्र को जन मानस तक पहुँचाने के लिए एक काव्य की आवश्यकता थी जिसे श्री चिरंजीलाल अग्रवाल ने अग्र-कथा की रचना कर पूरा कर दिया है। अग्र-कथा एक काव्य है जिसमें सोलह सर्ग हैं तथा पद्यों की कुल संख्या ४३०० है। इतने विशाल काव्य को यदि महाकाव्य भी कहा जाए तो अनुचित न होगा। श्री चिरंजीलाल अग्रवाल द्वारा रचित अग्र-कथा काव्य में महाराजा अग्रसेन का ऐसा उदात्त चरित्र अभिव्यक्त हुआ है जिसे हर कोई सम्मान्य मान सकते हैं। निश्चय ही यह अग्र साहित्य में एक सराहनीय व अनुपम वृद्धि है।

डॉ० सत्यकेतु विद्यालंकार

यह प्रसन्नता की बात है कि श्री चिरंजीलाल अग्रवाल ने महाराजा अग्रसेन के सम्पूर्ण जीवन पर आधारित 'अग्र-कथा' प्रबन्ध काव्य जैसे ग्रन्थ की रचना की है। लेखक का यह प्रयास अत्यन्त सराहनीय है। आशा है कि यह प्रबन्ध काव्य न केवल अग्रवाल समाज के लिए, बल्कि समूचे समाज के लिए एक उपयोगी ग्रन्थ सिद्ध होगा। लेखक ने अपनी बुद्धि, ज्ञान और परिश्रम से इस ग्रन्थ की रचना कर समाज की भारी सेवा की है।

बनारसी दास गुप्त

श्री चिरंजीलाल अग्रवाल द्वारा रचित ग्रन्थ 'अग्र-कथा' एक ऐसा सफल प्रबन्ध काव्य है जो महाकाव्य की कोटि में आता है। इसमें अग्रवंश प्रवर्त्तक महाराजा अग्रसेन का धार्मिक, सामाजिक तथा राष्ट्रीय पुरुष के रूप में चित्रण है। अभी तक ऐसा बृहद् काव्य अग्र-साहित्य में दृष्टिगोचर नहीं हुआ है। लेखक को इस श्रेष्ठ कृतित्व के लिए हार्दिक बधाई।

श्रीकिशन मोदी

अग्र-कथा सार

गर्ग ऋषि अग्रोहा जाकर अग्रसेन-सुत महाराजा विभु को यह कथा सुनाते हैं—

अग्रसेन का माधवी से विवाह होने के कारण देवराज इन्द्र अपना क्रोध प्रकट करते हैं। वे प्रताप नगर पर अकाल डालते हैं और माधवी को प्राप्त करने तथा अग्रसेन के निष्कासन की माँग करते हैं।

अग्रसेन और इन्द्र का घनघोर युद्ध होता है। हार-जीत न होने पर अग्रसेन अपनी प्रजा को युद्धाग्नि से बचाने तथा भावी उत्थान की दृष्टि से प्रताप नगर का त्याग करते हैं।

वाराणसी में भगवान शिव से प्रेरणा प्राप्त कर अग्रसेन अग्रवन (आगरा) में महालक्ष्मी की तपस्या करते हैं और उनके आदेशानुसार कोलपुर जाकर नागराज महीरथ की कन्या नागसुता से विवाह करते हैं। प्रताप नगर वापस आने पर वहाँ उनका राज्याभिषेक और देवराज इन्द्र से सन्धि होती है।

अपने पिता महाराज वल्लभ की मृत्यु होने पर अग्रसेन गया जाकर उनका श्राद्ध करते हैं और फिर पिता को प्रेत योनि से मुक्त करने के लिए लोहागढ़ जाते हैं। पिता के निदेशानुसार वे अग्रोहा को अपनी राजधानी बनाते हैं तथा अग्र-साम्राज्य का विस्तार करते हैं।

वंशवृद्धि के लिए वे नागसुता के साथ महालक्ष्मी की पुनः तपस्या करते है और संतति प्राप्त करते हैं। अपने सर्वांगीण विकास के लिए अग्रसेन अठारह यज्ञ करते हैं और अपनी सन्तानों को अठारह गोत्र धारण कराते हैं। पशु हिंसा से घृणा होने पर अठारहवां यज्ञ अधूरा रह जाता है और ऋषियों के आदेश को मानकर वे अग्रवाल समाज का नव-निर्माण करते हैं।

वे फिर युवराज विभु का राज्याभिषेक कर तपस्यार्थ ब्रह्मसर (पंच गोदावरी) तीर्थ जाते हैं और ग्यारह वर्ष तप करके मोक्ष प्राप्त करते हैं।